घुमक्कड़ जंक्शन

संपादक- ललित शर्मा

स्मारिका 2024

www.newsexpres.com

जयतु जयतु घुमक्कड़ पंथा:

Urban Design

Urban Design

is a design studio where imagination and ideas are framed into reality. Reality which reflects the Urbanization of life, space and lifestyle.

Er. Gaurav Kesharwani

B.E. Civil
M. Tech Structure
A.F.I.V., A.M.I.E.

Our Services

- Interior Designing
- Construction
- Renovation
- Structural Designing
- Space Planning
- Estimation

Shop No. 307, Lalganga Business Park,
Near Pachpedinaka, Raipur, CG

Urbandesign.net.in
Call Us @ 7879005665
@unbandesign.net.in

अनुक्रमाणिका

4 - संपादकीय
5 - तरेंगा राज की महामाया
6 - छत्तीसगढ़ की रोमांचकारी गुफाएं
8 - प्रेम का प्रतीक अनूठा मंदिर
9 - प्रकृति की लाडली संतान छत्तीसगढ़
10 - सिरपुर से प्राप्त बौद्धधर्म की विशिष्ट धातु प्रतिमाएं
14 - सिरपुर (श्रीपुर) में धार्मिक सहअस्तित्व
17 - आदिमानवों की शरणस्थली हितापुंगार घुमर
18 - सिरपुर उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं का अवलोकन
20 - मेरी सिरपुर यात्रा
22 - प्राचीन सिरपुर का कला वैभव
24 - बैगा जनजाति की अनूठी परंपरा
25 - दक्षिण कोसल का पारम्परिक भित्ति चित्र सुलो कुठी
26 - दमऊ दहरा ऋषभ तीर्थ
28 - प्रकृति का रहस्यमय संसार मंडीप खोल
30 - छत्तीसगढ़ में चौमासा
34 - छत्तीसगढ़ की लोक परम्परा में धान्य संस्कृति
38 - बरहाझरिया के शैलाश्रय और शैलचित्र
40 - जोंक नदी घाटी की सभ्यता एवं जलमार्गी व्यापार
41 - मिट्टी की गुणवत्ता एवं जैव विविधता का संरक्षण आवश्यक
42 - गौवंश का गुरुकुल : दईहान
44 - समग्र सृष्टि के रचयिता देव शिल्पी विश्वकर्मा
46 - छत्तीसगढ़ के मानसून का सम्मोहन

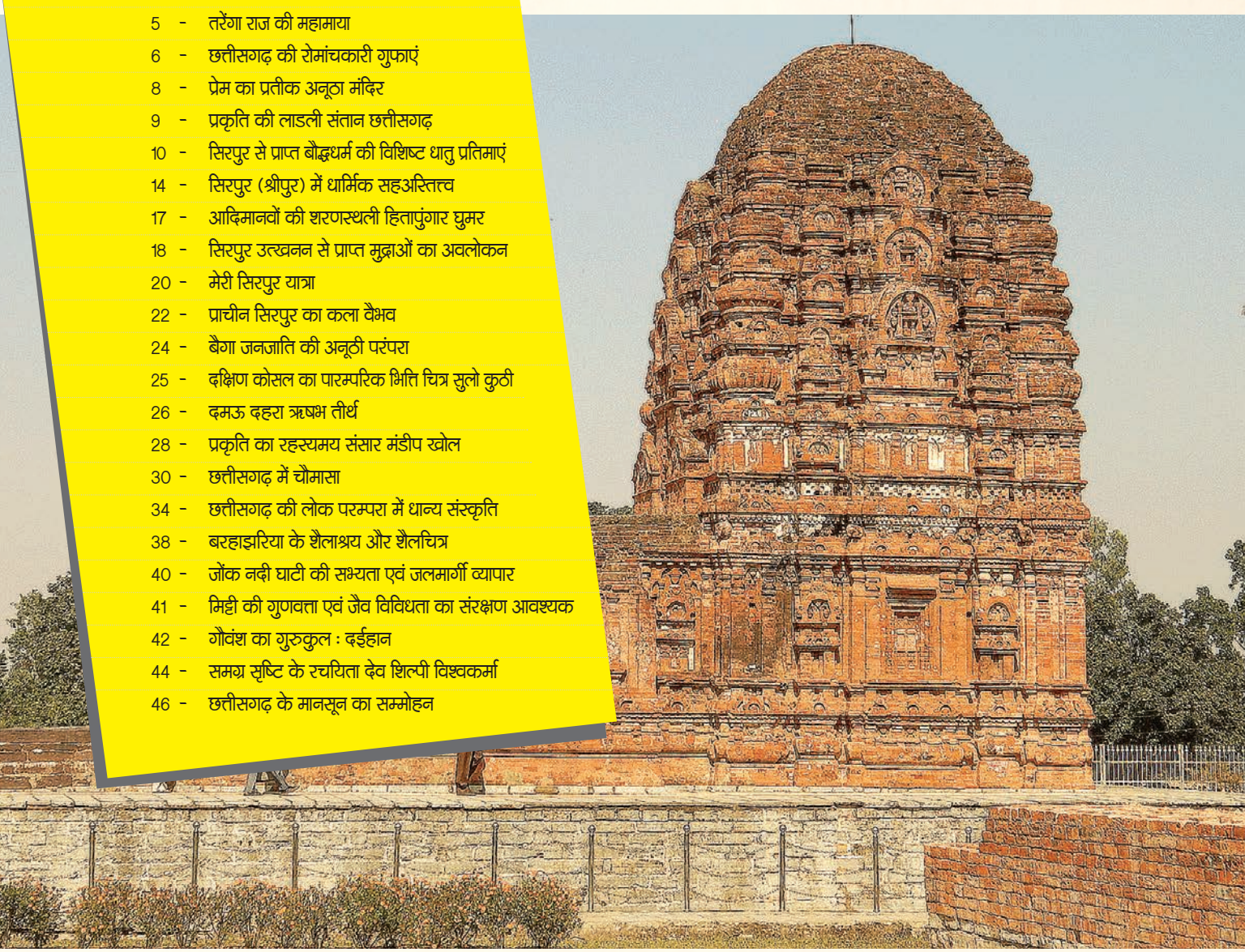

स्मारिका प्रकाशक एवं मुद्रक ललित शर्मा
अभनपुर जिला रायपुर छत्तीसगढ़ से प्रकाशित।
मो. - 9754433714
ईमेल - newsexprescg@gmail.com
वेबसाइट - www.newsexpres.com

संपादक
ललित शर्मा
फीचर एडिटर
श्रीमती संध्या शर्मा
संपादकीय सहयोगी
उदय शर्मा

जयतु जयतु घुमक्कड़ पंथाः, विजयतां लोकयात्राप्रपञ्चः।।
निरतं यत्र नित्या प्रयाणं, सुखिनः सन्तु सर्वे जनाः।।

नमस्कार मित्रों,

घुमक्कड़ जंक्शन स्मारिका 2024 का नवीन अंक आपको प्रस्तुत एवं समर्पित है। यह स्मारिका विगत छः वर्षों से इसलिए प्रकाशित की जा रही है कि प्रदेश एवं देश के पर्यटन की सांस्कृतिक, प्राकृतिक तथा पुरातात्विक विशेषताओं से लोग परिचित हो सकें एवं मनचाहे स्थलों पर पर्यटन कर भाग दौड़ की जिन्दगी में कुछ सुकून के पल प्राप्त कर आगामी कार्यों के लिए ऊर्जा ग्रहण कर सकें।

घुमक्कड़ जंक्शन 2023 का गत वर्ष प्रकाशन नहीं हो पाया इसके कारण से आप सभी निकटस्थ मित्र परिचित हैं। मैं इस हालात में नहीं था कि कोई कार्य कर सकूं। बेटी श्रुतिप्रिया की हमारे पारिवारिक जीवन से अनुपस्थिति को हम अभी तक मानसिक रुप से स्वीकार नहीं कर पाये हैं। फ़िर भी पिछले दो महीनों से सारी शक्ति का संचय कर पुनः जीवन को पटरी पर लाने का प्रयास कर रहा हूँ।

छत्तीसगढ़ भारत के हृदय स्थल का अनुपम एवं अनदेखा रत्न है। यहाँ प्राकृतिक सौंदर्य के साथ ऐतिहासिक धरोहरों एवं जैव विविधता का संगम देखने मिलता है। इस प्रदेश का मानसून किसी अन्य स्थानों से सुंदर एवं मानस को प्रभावित करने वाला होता है। इस प्रदेश में पुरातात्विक धरोहरों का अम्बार है, जो पर्यटन के साथ अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। बस्तर की गुफ़ाएं एवं झरने अपने आप में विशिष्ट हैं।

पुरातात्विक स्मारकों के साथ वनांचल स्थित शैलाश्रयों में आदिमानवों द्वारा उकेरे गये गैरिक चित्र तत्कालीन समय के अमिट दस्तावेज हैं जो हमें उनके रहस्यमय क्रिया कलापों एवं जीवन शैली के विषय में बताते हैं। यहाँ के संरक्षित वन्य अभयारण्य पर्यटकों के लिए जीवंत संग्रहालय हैं। आप छत्तीसगढ़ दर्शन करते है तों आपको वनांचल में हर बीस किलोमीटर में प्राकृतिक बरसाती झरने मिल जाएंगे। हरियाली से ओत प्रोत धरा किसी दैवीय स्थान या स्वर्ग जैसी प्रतीत होती है।

दैवीय स्थानों की चर्चा करें तो प्राचीन काल से सनातन धर्म के सभी सम्प्रदायों शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, जैन एवं बौद्धों का संगम स्थल भी दिखाई देता है। प्राचीन काल में ये सभी सम्प्रदाय यहाँ पुष्पित एवं पल्लवित हुए। इस सभी सम्प्रदायों के पुरावशेष सरगुजा से लेकर बस्तर तक दिखाई देते हैं। उल्लेखनीय है भगवान राम ने भी इस दण्डकारण्य को ही लंका जाने के मार्ग के रुप में चुना। जिसके प्रमाण हमें लोक संस्कृति में प्राप्त होते हैं तो कालांतर में मंदिरों एवं अन्य स्मारकों में भी दिखाई देने लगे।

इस अंक को मैं छत्तीसगढ़ के पुरातात्विक नगर सिरपुर के विविध आयामों पर प्रकाशित करना चाहता था। लेकिन उपरोक्त विषय पर लेख कम ही आए। इसलिए समय कम होने के कारण अन्य स्थलों से भी सम्बंधित आलेखों को इस अंक में सम्मिलित करना पड़ा। इस तरह यह अंक छत्तीसगढ़ के पर्यटन के विविध आयामों पर तैयार हो गया। इसके साथ ही आगामी अंक 2025 का विषय छत्तीसगढ़ की जैवविविधता एवं ईको टुरिज्म पर केन्द्रीत होगा। आशा है कि यह अंक आपको पसंद आएगा और आपकी प्रतिक्रियाएं मुझ तक पहुंचेंगी।

आपका
ललित शर्मा
सम्पादक न्यूज एक्सप्रेस डॉट कॉम

यह आलेख अक्टुबर 2022 मेरी बेटी श्रुतिप्रिया शर्मा ने लिखा था। उस समय वह प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति का अध्ययन पंडित रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर से कर रही थी। उसका विवाह हुए छ: महीने ही हुए थे और वो अपनी ससुराल भाटापारा में थी तो मैने उसे नवरात्रि के लिए तरेंगा राज की महामाया का अध्ययन कर आलेख लिखने कहा था। वह महामाया मंदिर गई आने के बाद आलेख लिखा। उसने मुझे हाथ से लिखा हुआ आलेख भेज दिया तो मैने उसे टाइप करके भेजने कहा। मुझे बोली की पापा बुखार आ रहा है, टेबलेट खाकर गई थी। कल टाइप करवाकर भेज दूंगी। मैंने उसे टेलीफ़ोन पर ही आलेख पढने कहा और मैंने आलेख टाइप किया। मुझे नहीं मालूम था कि यह श्रुति के जीवन का अंतिम आलेख होगा। आज श्रुति हमारे बीच नहीं है। उसकी यादें हमारी स्मृतियों में है। भरे ह्रदय से स्नेह स्वरुप यह आलेख प्रकाशित कर रहा हूँ।

तरेंगा राज की महामाया

श्रीमती श्रुतिप्रिया शर्मा
स्मृति शेष
अभनपुर, छत्तीसगढ़

दाऊ कल्याण सिंह की नगरी एवं तरेंगा राज शिवनाथ नदी के तट पर राजधानी रायपुर से 70 किलोमीटर एवं बिलासपुर से 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह गांव मां महामाया की नगरी के नाम से प्रसिद्ध है, मान्यता के अनुसार मां महामाया का मंदिर प्राचीन है, मंदिर के पुजारी लोकेशनाथ योगी बताते हैं कि यह मंदिर उनके पूर्वजों के भी पूर्वजों के समय का समय का है।

मंदिर के इतिहास से जुड़ी एक कथा प्रचलित है कहा जाता है कि "एक बार एक भैसा तालाब में गिर गया जब वह तालाब से निकला तो उसके सिंग पर जल में उपस्थित जाले एवं चीले इत्यादि लग गए थे जब भैसा दौड़ने लगा तो ग्रामवासियों ने उसका पीछा किया, पीछा करने के पश्चात जहां वह भैंसा रुका वहां हवन कुंड था और मां महामाया का मंदिर एवं बलि दी हुई सामग्री पशुओं के सींग इत्यादि ग्रामवासियों ने देखे। ग्रामवासी मंदिर के अस्तित्व से अज्ञात थे, ग्रामवासियों ने इसकी सूचना गांव के मुखिया को दी, गांव के बैगा ईश्वर पटेल बताते हैं कि यह घटना तुलेश्वर नाथ अग्रवाल जो दाऊ कल्याण सिंह के दादा है उनके समय से भी पहले की है।

समय-समय पर मंदिर का जीर्णोद्धार कराया गया परंतु मां महामाया देवी की प्रतिमा वैसी ही स्थापित है जैसी वह पहले हुआ करती थी। जीर्णोद्धार का कार्य मंदिर एवं गर्भ गृह के बाहर ही हुआ है। माता के श्रृंगार हेतु सामने के दरवाजे से प्रवेश वर्जित है अर्थात पुजारी माता के श्रृंगार हेतु पीछे के दरवाजे से जाकर मां का श्रृंगार करते हैं, बाकी मंदिरों के समान गर्भ गृह में मां महामाया की प्रतिमा दरवाजे के सीध में ना होकर बाजू में रखी गई है ताकि सीधी दृष्टि मां पर ना पड़े।

ग्रामवासियों की यह भी मान्यता है कि मां महामाया विपदा ओं एवं बीमारियों से ग्राम वासियों की रक्षा करती है इसीलिए जाते हुए आषाढ़ मास से बैगा गांव की नदी से जल लाकर माता को चढ़ाकर उस जल की पूजा करके ग्राम बांधने की तैयारी में लग जाते हैं, इस प्रक्रिया के पहले गांव में हांका किया जाता है। सावन के आखिरी हफ्ते में यह जल का छिड़काव गांव के चारों ओर किया जाता है। बैगा इस जल का छिड़काव ग्रामवासियों को अपने घरों में किसानों को अपने खेत-खार में करने को कहते हैं इसके पश्चात मां महामाया महामारी जादू-टोना, धुकी-महामारी इत्यादि से गांव की रक्षा करती है।

जिस प्रकार एक मां अपनी संतान की रक्षा करती है, उसी प्रकार मां महामाया भी अपनी संतानों की रक्षा करती है। ग्रामवासी यहां अपनी मनोकामना की पूर्ति हेतु आते हैं, मंदिर प्रांगण में स्थित अकोल के वृक्ष पर सैकड़ों नारियल बंधे हुए हैं जो मनोकामना ओं की पूर्ति हेतु बांधे गए हैं। इनमें से कुछ नारियल बहुत पुराने हैं परंतु एक नारियल में भी चींटी अथवा सूक्ष्म जीव जंतु देखने को नहीं मिलते।

मनोकामना पूर्ण होने के पश्चात ग्रामवासी यहां बलि देते हैं अथवा भंडारा करवाते हैं, जिस प्रकार माता अपना स्नेह बनाए रखती है उसी प्रकार माता के रुष्ट होने पर माता का प्रकोप भी देखने को मिलता है। वर्षो पहले माता रुष्ट गई थी एवं अपने मंदिर के पट अंदर से बंद कर लिए थे, अथक प्रयासों के पश्चात भी पट ना खुलने पर माता को बकरे एवं 108 नींबू की बलि चढ़ाई गई तत्पश्चात माता ने पट खोले। वहीं दूसरी ओर रूष्ट होने पर माता ग्राम से चली गई थी, कुछ ही दूरी पर माता का मंदिर बनाकर माता को रोका गया एवं वापस गांव लाया गया।

मंदिर प्रांगण में उपस्थित एक श्रद्धालु कमलकांत बताते हैं कि मां महामाया की तीन बहने और है, जिनमें दो तालाब के किनारे एवं एक सिंगारपुर स्थित मावली में स्थापित है। ग्रामवासी कहते हैं कि चारों बहनें आधी रात में स्नान हेतु तालाब में जाती है जिसने भी देखने की कोशिश की या पीछे गया वह कभी लौट कर नहीं आया। नवरात्रि में मां महामाया सिंगारपुर में स्थित अपनी छोटी बहन को श्रृंगार चढ़ाने जाती है। मंदिर में मां महामाया के अतिरिक्त खुजली माता का मंदिर भी है, कहा जाता है माता को नमक चढ़ाकर, माता के पानी से स्नान करने से सभी चर्म रोगों से निदान मिलता है।

मंदिर प्रांगण में छोटी-छोटी आकर्षक मूर्तियां भी स्थापित हैं जो समिति के द्वारा बनवाई गई है। छोटे-छोटे मंदिर हैं जो समितियों तथा ग्रामवासियों द्वारा बनवाए गए हैं। इसके अतिरिक्त प्रवेश द्वार के बाई और ठाकुर देव विराजमान है। मंदिर के पुजारी बताते हैं कि गांव के बैगा चंदन दास योगी द्वारा यह प्रतिमा निकाली गई, तत्पश्चात उनका स्वर्गवास हो गया। गांव के बैगा ईश्वर पटेल बताते हैं कि चबूतरे के नीचे ठाकुर देव की अनेकों प्रतिमाएं हैं।

मंदिर में श्रद्धालुओं के द्वारा अखंड ज्योत जलाई जाती है। नवरात्रि में हजारों की भीड़ में लोग इकट्ठा होकर मां महामाया की उपासना करते हैं एवं ज्योत प्रज्वलित की जाती है, भंडारे करवाए जाते हैं मेलों का आयोजन भी किया जाता है।

छत्तीसगढ़ की रोमांचकारी गुफाएं

पर्यटन की दृष्टि से देखें तो छत्तीसगढ़ बहुत समृद्ध है। यहाँ पर्यटन के वे सभी आयाम दिखाई देते हैं जो एक पर्यटक ढूंढता है। नदी-पहाड़, गुफ़ाएं, प्राकृतिक वन, वन्य पशु पक्षी, प्राचीन स्मारक एवं इतिहास, खान पान विविधताओं से भरा हुआ है। मानसून के दिनों में तो यह धरती किसी स्वर्ग से कम नहीं है। साहसिक पर्यटन की दृष्टि से गुफ़ाएं, नदी ट्रैकिंग, जंगल ट्रेकिंग, कयाकिंग की ओर युवाओं का रुझान बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है।

वर्तमान में युवाओं में एडवेंचर टुरिज्म के प्रति उत्साह देखा जा रहा है, एडवेंचर टुरिज्म काफ़ी उफ़ान पर है। इसके अंतर्गत, नदी-नालों, पहाड़ों की ट्रेकिंग, पहाड़ों में गुफ़ाओं की खोज एवं उसमें समय व्यतीत करना तथा भूतहा स्थानों पर रात गुजारने के रोमांच को अनुभव किया जाता है। इस रोमांच की खोज में युवा दीवाने हो रहे हैं एवं इसके लिए दूरी एवं समय सीमा का भी कोई बंधन नहीं समझते।

एडवेंचर के लिए छत्तीसगढ़ में स्थानों की कमी नहीं है, जिस तरह का एडवेंचर युवा पसंद करते हैं, वे सभी यहां मौजूद हैं। हम केव/गुफ़ा एडवेंचर टुरिज्म की चर्चा करेंगे। प्राकृतिक संसाधन एवं रोमांचकारी भू-भाग तथा सघन वनों से आच्छादित इस भूमि में भूतल से लेकर पहाड़ों में असंख्य गुफ़ाएं विद्यमान हैं, कई गुफ़ाएं तो ऐसी हैं जो एक्सप्लोर ही नहीं हुई हैं। उनके विशय में सिर्फ़ इतनी ही जानकारी मिलती है कि फ़लां जगह गुफ़ा है, पर किसी ने उसके भीतर जाने की हिम्मत नहीं की है।

सरगुजा अंचल छत्तीसगढ़ का एक ऐसा भू-भाग है जहाँ प्रकृतिदत्त सौंदर्य की अकूत सम्पदा है। वैसे तो सरगुजा संभाग में पांच जिले समाहित हैं पर हम सरगुजा जिले की अम्बिकापुर विधानसभा में रोमांचकारी एवं ऐतिहासिक गुफ़ाओं की भ्रमण करते हैं। यहाँ की प्रमुख गुफ़ा रामगढ़ की सीताबेंगरा एवं जोगीमाड़ा को माना जाता है, क्योंकि इनमें मौर्यकालीन ब्राह्मी भित्तिलेख मिलते हैं। इससे इन गुफ़ाओं का ऐतिहासिक एवं सीता माता से जुड़े होने के कारण पौराणिक महत्व भी है, परन्तु प्रकृति निर्मित कई गुफ़ाएं रामगढ़ पहाड़ पर हैं। सीता बेंगरा के समीप बांए तरफ़ एक खोह भी है जिसे शेरमाड़ा कहा जाता है।

सीताबेंगरा के नीचे हथफ़ोड़ सुरंग है, जो लगभग 180 फ़ुट लम्बी है। इसका नाम हथफ़ोड़ इसलिए भी पड़ा कि इस प्राकृतिक सुरंग से हाथी निकल जाते हैं। हथफ़ोड़ से नीचे से गुजर कर जब हम सीता बेंगरा के पीछे पहुंचते हैं तो यहाँ भी तीन गुफ़ाएं हैं। जिसमें से एक को लक्ष्मण बेंगरा कहा जाता है। इस गुफ़ा तक पहुंचने के लिए चट्टान को काटकर पैड़ियाँ बनाई हुई हैं, जिससे थोड़ी सी मेहनत करने के बाद यहाँ तक पहुंचा जा सकता है, बाकी दोनों गुफ़ाएं भी समानांतर हैं, लक्ष्मण बेंगरा में मानव बसाहट के चिन्ह के रुप में सोने के पत्थर का चबूतरा भी है।

चलकर जब हम पहाड़ी पहले मोड़ के पास पहुंचते है तो बाएं हाथ पर थोड़ी दूर पर भालू माड़ा नामक गुफ़ा है। छोटे तुर्रा से दांए हाथ पर हनुमान गुफ़ा है। जब हम रामगढ़ के शीर्ष पर पहुंचते हैं तो यहाँ से चलकर तालाब के पार करने के बाद पहाड़ के कगार पर एक रहस्यमय गुफ़ा है, जिसका मुहाना दो ढाई-फ़ुट है, कहते हैं कि इसमें शिवलिंग है तथा कोई साधू यहां नित्य पूजा करने आया करता था।

यहाँ से दांए तरफ़ पहाड़ी का चक्कर काटने पर कगार पर दुर्गा गुफ़ा है, जो वर्तमान में निवास करने के लायक है, इसके मुहाने पर ग्रिल का गेट लगा है एवं आठ-दस आदमी आराम से यहां रात गुजारने का आनंद ले सकते हैं। वैसे तो रामगढ़ पहाड़ पर अन्य गुफ़ाएं भी हैं, पर उन्हें एक्सप्लोर नहीं किया गया है। इसलिए एक्सप्लोर करने के रोमांच का भी मजा लिया जा सकता है।

रामगढ़ से महेशपुर की दूरी सात किमी है, यहाँ से जजगी होते हुए हमें केदमा मार्ग पर बारह किमी की दूरी

पर लक्ष्मणगढ़ में भी रानुमाड़ा नामक एक विशाल गुफा प्राप्त होती है। यह प्राकृतिक गुफा भू-तल में है। मुख्य मार्ग से सौ मीटर नीचे उतरकर चलने पर जब अचानक गुफा का विशाल मुहाना दिखाई देता है तो आश्चर्य से मुंह खुला का खुला रह जाता है।

इस गुफा का मुहाना लगभग बीस फुट ऊंचा होगा। यहाँ भीतर सतत जल प्रवाह होते रहता है तथा यह गुफा इतनी बड़ी है कि हजार आदमी आराम से समा सकते हैं। इस अंचल में भालुओं की अच्छी खासी संख्या है तथा तेंदूए भी दिखाई देते हैं। यह गुफा भी वन्य प्राणियों का आदर्श निवास स्थल है, क्योंकि जल के साथ आराम करने की जगह उपलब्ध है। परन्तु सावधानी के साथ यहाँ भरपूर रोमांच का अनुभव किया जा सकता है।

ऐसी एक अन्य गुफा नागमाड़ा ब्लॉक मुख्यालय लखनपुर से उत्तर-पश्चिम दिशा में 15 किमी की दूरी पर गुमगरा-भरतपुर मार्ग पर गुमगरा के सघन वन क्षेत्र में यह बड़ी गुफा स्थित है। इस गुफा को लेकर कई रहस्यमय कथाएं ग्रामीणों के मुझ से सुनाई देती हैं। गुफा का मुहाना लगभग आठ फुट की गोलाई लिए हुए है। इस गुफा में उतने के लिए वृक्षों की लताओं एवं जड़ों का सहारा लेना होता है तथा यहाँ का जल ग्रहण अनिवार्य माना जाता वरना अनिष्ट की आशंका रहती है।

जैसा कि इस गुफा का नाम नागमाड़ा (नागों के रहने का स्थान) है, नामारुप इस गुफा में नाग, करैत, अहिराज, चिंगराग, अजगर सहित अन्य जहरीले सर्प पाए जाते हैं तथा वे बिलों से झांकते भी दिखाई देते हैं। इसलिए वनवासी इन्हें प्रसन्न रखने के लिए पूजा करते हैं।

स्थानीय निवासी कहते हैं कि त्यौहारों के अवसरों पर इस गुफा से मुहरी, चांग, डफड़ा आदि प्राचीन वाद्ययंत्रों की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। आज तक यह रहस्य बना हुआ कि प्राचीन काल में बजाए जाने वाले इन वाद्यों का वादन त्यौहारों के अवसर कौन करता है? इस गुफा में रजस्वला स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है, कहा जाता है इनके प्रवेश करने से गुफा जलमग्न हो जाती है। बस्तर अंचल में प्रसिद्ध गुफाएं है, जिनमें कोटमसर, कैलाश, दण्डक इत्यादि प्रमुख हैं। ये बहुत बड़ी गुफाएं हैं, कांगेर वैली में अन्य गुफाएं में हैं, जिन्हें एक्सप्लोर करने का आनंद ही कुछ और है। गंडई क्षेत्र में मंदीप खोल एक बड़ी गुफा है, जहाँ प्रतिवर्ष मेला भरता है। दंतेवाड़ा के पास स्थित ढोलकल तक आजकल ट्रेकिंग करने का उत्साह युवाओं में दिखाई देता है। प्रत्येक स्थल के साथ कुछ न कुछ किंवदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं। पर्यटक की दृष्टि से जिनको सुनना एवं समझना चाहिए।

खैर ऐसे प्राकृतिक एवं प्राचीन स्थानों के साथ स्थानीय मान्यताएं एवं किंवदन्तियाँ जुड़ी होती है, जो रोमांचकारी होती हैं। उदयपुर के रामगढ़ से लेकर मैनपाट तक की पहाड़ियों में ऐसी सैकड़ों गुफाएं मिल जाएंगी, जिन्हें आप एक्सप्लोर कर सकते हैं। अगर आप रोमांच प्रेमी है एवं रोमांच का अनुभव करना है तो अवश्य ही सरगुजा अंचल की इन गुफाओं में समय गुजारिए एवं वास्तविक रोमांच का अनुभव प्राप्त कीजिए।

ललित शर्मा
प्रधान संपादक न्यूज एक्सप्रेस

प्रेम का प्रतीक अनूठा मंदिर

सिरपुर की महारानी के प्रेम स्मारक का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृतांत में किया है। महारानी के प्रेम की निशानी का खुलासा लक्ष्मण मंदिर में मिले तथ्यों से उजागर हुआ और लोगों ने जाना। 635 से 640 ईस्वी के दौरान महारानी वासटा देवी ने अपने पति हर्षगुप्त के दिवंगत होने के बाद अपने पुत्र महाशिव गुप्त बालार्जुन के कार्यकाल में मंदिर का निर्माण करवाया। महारानी वासटा मगध नरेश सूर्य वर्मन की बेटी वैष्णव धर्मावलंबी थीं जिन्होंने पति की स्मृति में हरि विष्णु का अनूठा मंदिर बनवाया।

लक्ष्मण मंदिर ईंटों से निर्मित भारत के सर्वोत्तम मंदिरों में से एक है। अलंकरण सौंदर्य से परिपूर्ण इसका निर्माण कौशल मनोहारी एवं कलात्मक है। ईंटों से निर्मित मंदिर की अनुपम कलाकृति एवं स्थापत्य कला बेजोड़ है। यही कारण है कि इतिहासकार कनिंघम ने बनारस की गुप्त शैली व एरन के तोरण द्वार जैसी अनूठी शिल्पकला से लक्ष्मण मंदिर की तुलना की है।

मंदिर सात फुट ऊंचे पाषाण निर्मित जगती पर अपनी भव्यता लिए हुए स्थापित हैं। पंचरथ प्रकार का मंदिर गर्भगृह, अंतराल और मंडप से युक्त है। मंदिर की वास्तुकला अत्यंत कलात्मक है। कुंभ, कलश व अर्धस्तंभ द्वारा निर्मित आले वहीं स्तंभ शीर्षो पर घट पल्लव उकेरे गये है। शीर्षस्थ में पुष्प वल्लरी, चित्र वल्लरी अलंकरण तथा चौत्य मेहराबों पर अलंकृत कपोत शिल्प है।

लक्ष्मण मंदिर के निर्माण में ईंटों की वास्तुकला विशेश उल्लेखनीय है। ईंटों को तराश कर मंदिर को आकार दिया गया है। मिट्टी से बने ईंटों पर ही सूक्ष्म शिल्पकारी का सुन्दर नमूना लक्ष्मण मंदिर में देखा जा सकता है। मंदिर की स्थापत्य कला काल निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण इसलिए है कि मंदिर के तोरण द्वार पर विष्णु के अवतार कृष्ण को उकेरा गया है। प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से गुप्त काल की अपेक्षाकृत अधिक विकसित शैली है।

द्वार पट पर गंगा, जमुना देवी की अनुपस्थिति और वहां कृष्ण लीला व पौराणिक कथाओं को उत्कीर्ण किया गया है। गुप्त काल की शैली से हटकर निर्माण परंपरा का यह प्रथम सोपान है। गुप्तकालीन के मंदिरों में अंतिम देवगढ़ स्थित दशावतार मंदिर में परिलक्षित होता है कि वह लक्ष्मण मंदिर के बाद के काल में बना है। कारण यह कि लक्ष्मण मंदिर के तोरण द्वार पर उत्कीर्ण वराह मूर्ति उदयगिरि के वराह के समान हैं परंतु इन दोनों में कुछ विभिन्नता भी है। लक्ष्मण मंदिर की वराह मूर्ति अष्टभुजी है और उदयगिरी की मूर्ति दिभुजी, इस से स्पष्ट होता है कि लक्ष्मण मंदिर की वराहकृति उदयगिरि की वराहकृति से दो शताब्दी बाद की है। मंदिर के तोरण द्वार पर कृष्ण लीला के दृश्य प्राचीन गुफाओं की कलाकृति से भी मिलते हैं।

प्रवेश द्वार अत्यंत आकर्षक है। द्वार शीर्ष पर शेशषायी विष्णु प्रदर्शित हैं। उभय द्वार शाखा पर विष्णु के प्रमुख अवतार, कृष्ण लीला के दृश्य, अलंकरणात्मक प्रतीक, मिथुन दृश्य तथा वैष्णव द्वारपालों का अंकन है। मंदिर की स्थापत्य कला अनूठी है जो और कहीं नहीं मिलती, जैसे शिखर के विभिन्न तलों को प्रदर्शित करने वाले भूमि आमलक, अलंकृत गज शिल्प, अल्प शिखर, कुंभ, कलश, कपोत के साथ अधिष्ठान की ढलाईयां जो उत्तर भारत के मंदिरों में प्राप्त होती है।

गर्भगृह में शेश नाग की शैय्या पर बैकुंठनारायण की दिभुजी मूर्ति है। यह हरि याने विष्णु का मंदिर है। लक्ष्मण शेशनाग का अवतार है इस लिए हरि की दिभुजी मूर्ति को लक्ष्मण मानकर इसे लक्ष्मण का मंदिर बताया। विष्णु की प्रतिमा जहां जहां भी है सभी में विष्णु चतुर्भुजी है इसलिए यह भ्रान्ति हुई और हरि का मंदिर लक्ष्मण मंदिर के नाम से जाना गया।

प्रेम कहानी का अद्वितीय मंदिर के संदर्भ में पुरासंस्कृति के जानकारों के परस्पर विरोधी मान्यताओं के साथ सिरपुर उत्खनन के निर्देशक अरुण कुमार शर्मा के अनुसार "सिरपुर का विनाश 12 वीं सदी में भूकंप तथा उसके बाद महानदी की विनाशकारी बाढ़ से हुआ।" प्रकृति की विनाशकारी लीला के बावजूद महारानी वासटा के प्रेम का प्रतीक मंदिर आज भी अपनी पूरी शान से खड़ा है।

रविन्द्र गिन्नौरे
भाटापारा छत्तीसगढ़

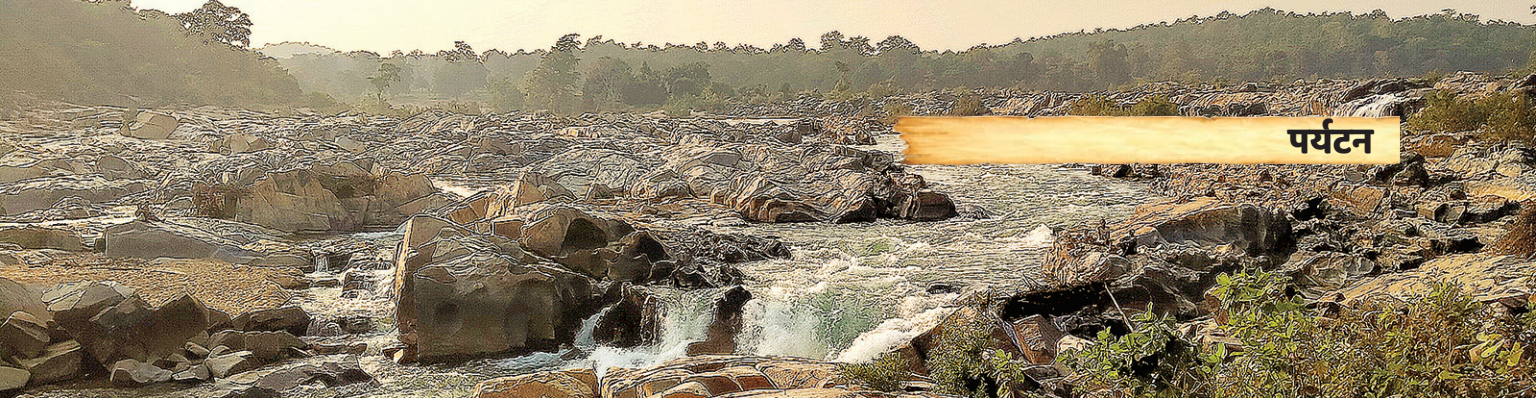

प्रकृति की लाडली संतान छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ राज्य के निर्माण के डेढ दशक बाद के बदलाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। राज्य ने लगभग सभी क्षेत्रों में विकास के नए आयामों को छुआ है। सड़क, बिजली-पानी, शिक्षा, भोजन, स्वास्थ्य आदि मूलभूत सेवाओं में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही पर्यटन के विकास क्षेत्र में राज्य ने उल्लेखनीय कार्य किया है। केन्द्रीय पर्यटन विभाग के आंकड़ों के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य के पर्यटन ने भारत के शीर्ष 10 पर्यटन स्थलों में अपना स्थान बना लिया है। जारी आंकड़ों में बताया गया है कि सन् 2013 में 2 करोड़ 28 लाख पर्यटक छत्तीसगढ़ आए। प्रदेश की पर्यटन नीतियों को इसका श्रेय जाता है।

छत्तीसगढ़ राज्य पर्यटन की दृष्टि से भारत का सर्वोत्तम प्रदेश माना जा सकता है। यहाँ अभ्यराण्य, नदी-घाटी सभ्यताओं के अवशेष, पुरातात्विक महत्व के स्मारक, नदियाँ, जलप्रपात, झरने, पर्वत, जलाशय, वन्य प्राणी, आदि मानव के द्वारा निर्मित शैलाश्रय, धार्मिक स्थल, वानस्पति एवं जैव विविधता, सांस्कृतिक विरासत, विभिन्न तरह के उत्सवों के संग बस्तर का 75 दिनों के विश्व प्रसिद्ध दशहरा के साथ प्रतिवर्ष राजिम में कुंभ का आयोजन दर्शनीय है। बस्तर एवं सरगुजा पारम्परिक आदिवासी काष्ठ एवं धातू शिल्प विश्व प्रसिद्ध होने के साथ-साथ टसर के महीन धागे से निर्मित यहाँ का कोसा सिल्क का दुनिया में कोई मुकाबला नहीं। पर्यटन की दृष्टि से हम देखें तो छत्तीसगढ़ प्रकृति की लाडली संतान है। जिस तरह एक माता अपनी संतानों में से किसी एक संतान से विशेष अनुराग एवं स्नेह रखती है, उसी तरह प्रकृति भी छत्तीसगढ़ की धरती से अपना विशेष अनुराग प्रकट करती है। इस पूण्य भूमि में दक्षिण कोसल के राजा भानुमंत की पुत्री मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की माता कौसल्या ने जन्म लिया था। प्रकृति की गोद में बसे भगवान राम के ननिहाल (दक्षिण कोसल) छत्तीसगढ़ में एक ओर निर्मल जल की धार लिए प्रवाहित होती शास्त्रों में वर्णित चित्रोत्पला गंगा (महानदी) शिवनाथ, इंद्रावती, हसदेव, अरपा, पैरी, सोंढूर, मनियारी, महान, हाफ़, लीलागर, डंकिनी-शंखिनी आदि नदियाँ हैं तो दूसरी तरफ तीरथगढ़, चित्रकोट जैसे जलप्रपात के साथ छोटे बड़े झरने शस्य श्यामल धरा को मनोहर रुप प्रदान करते हैं।

छत्तीसगढ़ में धार्मिक पर्यटन के साथ एडवेंचर पर्यटन के लिए भी बहुत सारे स्थान हैं। वैष्णव क्षेत्र के रुप में हमारे यहां पद्मावती नगरी राजिम, शिवरीनारायण, इत्यादि महत्त्वपूर्ण स्थान है, शक्ति स्थलों में दंतेश्वरी मंदिर दंतेवाड़ा, महामाया रतनपुर, बम्लेश्वरी डोंगरगढ़, खल्लारी माई खल्लारी (महासमुंद) महामाया अम्बिकापुर एवं अन्य स्थल हैं। शैव धार्मिक स्थलों के रुप में राजिम पंचकोशी, कुलेश्वर, पटेश्वर, चम्पेश्वर, बम्हनेश्वर, कपुरिश्वर, फ़णीकेश्वर, विशाल प्राकृतिक शिवलिंग भूतेश्वरनाथ (गरियाबंद) बूढ़ामहादेव रतनपुर, देवगढ़ सरगुजा इत्यादि हैं। रामायणकालीन दक्षिणापथ मार्ग से गुजरते हुए वर्तमान में भी हमें कदम-कदम पर धार्मिक दर्शनीय स्थल मिलते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य का लगभग 44 फ़ीसदी भू-भाग वनों से अच्छादित है। यहाँ विभिन्न तरह की वन सम्पदा के साथ जैविक विविधता भी दिखाई देती है। यहाँ सबसे अधिक वन संपदा एवं वन्यप्राणी है। वन्य प्राणियों एवं वनों की रक्षा करने के लिए यहाँ इंद्रावती, कांगेर, गुरु घासीदास राष्ट्रीय उद्यान हैं। साथ ही अचानकमार, बादलखोल, बारनवापारा, सेमरसोत, सीतानदी, तमोर पिंगला, भैरमगढ़, भोरमदेव, गोमर्डा, पामेड़, उदन्ती अभयारण्य हैं। इंदिरा उद्यान, कानन पेंडारी चिड़ियाघर, मैत्री बाग चिड़ियाघर, नंदन वन चिड़ियाघर रायपुर एवं कोटमी सोनार मगरमच्छ पार्क भी है जो पर्यटकों की आंखों के रास्ते ह्रदय को प्रफ़ुल्लित करती है। वन प्रेमी एवं वन्य फ़ोटोग्राफ़ी करने वाले पर्यटकों के लिए छत्तीसगढ़ के वन किसी स्वर्ग से कम नहीं हैं। इन राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभ्यारण्यों में साल, सागौन, बेंत, धावड़ा, हल्दु, तेन्दु, कुल्लू , कुसुम, आंवला, कर्रा, जामुन, सेन्हा, आम, बहेडा, बांस आदि के वृक्ष पाए जाते हैं, इसके अतिरिक्त सफ़ेद मूसली , काली मूसली , तेजराज, सतावर, रामदतौन, जंगली प्याज, जंगली हल्दी, तिखुर, सर्पगंधा आदी औषधीय पौधे भी पाए जाते हैं। वन्य प्राणियों में शेर, तेन्दुआ, बाघ, चीतल, सांभर, लकडबग्घा, जंगली भालू, काकड, सियार, घड़ियाल, जंगली सुअर, लंगूर, सेही, माऊस डीयर, छिंद, चिरकमाल,, खरगोश, सिवेट, सियार, लोमड़ी, नील गाय, उदबिलाव, गौर, जंगली भैंसा, विभिन्न तरह के सर्प एवं मुर्गे, मोर, धनेश, महोख, ट्रीपाई, बाज, चील, डीयर, हुदहुद, किंगफ़िशर, बसंतगौरी, नाइटजार, उल्लू, तोता, बीइटर , बगुला, मैना, आदि पक्षी पाये जाते है।

प्राचीन स्थलों का भ्रमण करने वाले पर्यटकों के लिए बस्तर से लेकर सरगुजा तक शिल्प सौंदर्य का खजाना बिखरा हुआ है। बस्तर में बारसुर, नारायणपाल, दंतेवाड़ा, तुलार, गुप्तेश्वर, ढंढोरेपाल, भोंगापाल, मध्य छत्तीसगढ़ में आरंग, रतनपुर , मदकू द्वीप, भोरमदेव, मड़वा महल, पचराही, चतुरभूजी धमधा, मल्हार, नकटा मंदिर जांजगीर, शिवरीनारायण, ताला, सिरपुर, खल्लारी, जांजगीर, नगपुरा, खरखरा, देवबलौदा, सिंघोड़ा, बालौद, तुरतुरिया, पलारी, गिरौदपुरी, दामाखेड़ा, सिहावा, चंदखुरी, दमऊधारा, पाली, लाफ़ागढ़, चैतुरगढ़ तथा सरगुजा में सीता बेंगरा रामगढ़ (प्राचीन नाट्यशाला), सीतामढी, हरचौका, देवगढ, हर्रा टोला बेलसर, सतमहला, डीपाडीह, आदि प्राचीन स्थल दर्शनीय हैं। प्रागैतिहासिक काल के मानव सभ्यता के उषाकाल में छत्तीसगढ़ भी आदिमानवों के संचरण तथा निवास का स्थान रहा। इसके प्रमाण प्रमुख रूप से रायगढ़ जिले के सिंघनपुर, कबरा पहाड़, बसनाझर, बोतलदा, ओंगना पहाड़ और राजनांदगांव जिले के चितवाडोंगरी से प्राप्त होते हैं। आदिमानवों द्वारा निर्मित तथा प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के पाषाण उपकरण, महानदी, मांड, कन्हार, मनियारी तथा केलो नदी के तटवर्ती भाग से प्राप्त होते हैं। सिंघनपुर तथा कबरा पहाड़ के शैलचित्र विविधता तथा शैली के कारण प्रागैतिहासिक काल के शैलचित्रों में विशेष रूप से चर्चित हैं। बस्तर के कुटुमसर, कैलास गुफ़ा का अदभुत सौंदर्य प्रकृति की शिल्पकारी उत्कृष्ट प्रमाण है। प्रागैतिहासिक काल के अन्य अवशेषों के एकाश्म शवाधान के बहुसंख्यक अवशेष रायपुर और दुर्ग जिले में पाए गए हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य एवं सांस्कृतिक विविधता का सम्पूर्ण सौंदर्य छत्तीसगढ़ में देखने मिलता है। अंचल में पर्यटकों का निरंतर आना ही देश के घरेलू पर्यटकों के पसंदीदा राज्य के रुप में स्थापित करता है। केरल, हिमाचल, गोवा, उत्तराखंड जैसे पर्यटन के लिए स्थापित राज्यों को पछाड़ते हुए कम अवधि में शीर्ष पर अपना स्थान बना लेना महत्वपूर्ण है। नवीन राज्य छत्तीसगढ़ के लिए यह गौरव की बात है कि पर्यटन के क्षेत्र में भी हम उल्लेखनीय प्रगति कर रहे हैं। आईए छत्तीसगढ़ दर्शन के लिए चलें और जाने छत्तीसगढ़ प्रकृति की लाडली संतान क्यों कहा जाता है।

ललित शर्मा
प्रधान संपादक न्यूज एक्सप्रेस

सिरपुर से प्राप्त बौद्धधर्म की विशिष्ट धातु प्रतिमाएं

छत्तीसगढ़ राज्य के महासमुंद जिले में महानदी के दाहिने तट पर स्थित सिरपुर (21025' उत्तरी अक्षांश; 82011' पूर्वी देषान्तर) वर्तमान में एक कस्बा है। प्रदेश की राजधानी रायपुर से इसकी दूरी लगभग 80 कि. मी. पड़ती है। यह गुप्तोत्तर काल में स्थानीय राजवंशों यथा- शरभपुरीय और पाण्डुवंशी राजाओं के शासन काल (5-8वीं सदी ई.) में दक्षिण कोसल की राजधानी था। तत्कालीन परिस्थितियों में यह नगर मध्यभारत की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक शक्तियों में से एक था, जो उत्तर में वर्द्धन वंश तथा दक्षिण में चालुक्य वंश, पूर्व में शैलोद्भव वंश और पष्चिम में कलचुरि एवं राष्ट्रकूट वंश के समकालीन था। पाण्डुवंशी शासकों विशेषतः महाशिव बालार्जुन की धर्म-सहिष्णुता एवं संरक्षण में सिरपुर मूर्तिकला तथा वास्तुकला, धर्म, दर्शन, शिक्षा, व्यापार और वाणिज्य के एक महान केंद्र के रूप में विकसित हुआ।

समय-समय पर यहाँ के प्राचीन टीलों पर हुए उत्खनन से प्रभूत मात्रा में पुरावशेष मिलते रहे हैं, जिससे क्षेत्रीय इतिहास लेखन निरन्तर समृद्ध हुआ है। सिरपुर में प्रथम चरण का उत्खनन एम. जी. दीक्षित के निदेशन में 1953 से 1956 ई. के मध्य हुआ। द्वितीय चरण में श्री जगतपति जोशी एवं पद्मश्री अरुण कुमार शर्मा के निदेशन में 1999 से 2003 तक (बोधिसत्व नागार्जुन स्मारक संस्था एवं अनुसंधान केन्द्र, नागपुर के तत्वाधान में) और पद्मश्री डॉ. अरुण कुमार शर्मा के निदेशन में 2004 से 2011 ई. तक (संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, छत्तीसगढ़ शासन के तत्वाधान में) सिरपुर का उत्खनन संपन्न हुआ। इस तरह सिरपुर कुल उत्खनन अवधि और उत्खनित क्षेत्रफल की दृष्टि से न केवल छत्तीसगढ़ का वरन् मध्य भारत का सबसे बड़ा पुरातत्त्वीय स्थल माना जा सकता है।

भारत में धातु प्रतिमाओं को निर्मित करने का दीर्घ कालीन इतिहास रहा है। सिन्धुघाटी सभ्यता के उत्खनन में कांसे की कलात्मक नर्तकी की मूर्ति मिली है। नालन्दा एवं दक्षिण भारत में धातु प्रतिमाओं को बनाने की समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। नालन्दा की षैली में बनी सिरपुर से सन् 1939 ई. में लक्ष्मण मंदिर के पास उत्खनन के दौरान वहाँ के एक पुजारी भीखम बाबा को धातु प्रतिमाओं का एक बड़ा जखीरा प्राप्त हुआ था, जिसमें लगभग 60 धातु प्रतिमाएं थीं। कुछ समय बाद ये सभी प्रतिमाएं वहाँ के तत्कालीन जमींदार श्यामसुन्दर लाल दाऊ के घर पहुँची। इनमें से दो प्रतिमाएं गन्धेश्वर मंदिर के महन्त मंगलगिरि को भेंट की गईं। 16 सितम्बर 1945 को भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित खण्डहरों का वैभव नामक पुस्तक के लेखक मुनि कान्ति सागर को इनमें से 25 प्रतिमाओं का अवलोकन कराया गया। बाद में महन्त मंगलगिरि के पास रखी दोनों प्रतिमाएं मुनि कान्तिसागर ने प्राप्त कर ली। सन् 1952 ई. में नागपुर संग्रहालय के अध्यक्ष को सिरपुर से प्राप्त 6 धातु प्रतिमाएं और प्राप्त हुई थीं।

सिरपुर से प्राप्त धातु प्रतिमाएं कलात्मकता एव तकनीकि की दृष्टि से नालन्दा की धातु प्रतिमाओं के समरूप हैं। पाण्डुवंशी राजा हर्षगुप्त की महारानी एवं महाशिवगुप्त बालार्जुन की माता रानी वासटा, मगध नरेश सूर्यवर्मा की पुत्री थीं।1 मगध से वैवाहिक सम्बंध के कारण धातु प्रतिमाओं को बनाने की तकनीकि संभवतः नालन्दा से आयी होगी, जिसका विकास दक्षिण कोसल में महाशिवगुप्त बालार्जुन के राज्यकाल में हुआ। सिरपुर से बौद्धधर्म की अनेक धातु प्रतिमाओं की प्राप्ति हुई है, जो विभिन्न संग्रहों में प्राप्त होती हैं। कुछ प्रतिमाएं केन्द्रीय संग्रहालय, नागपुर, कुछ प्रतिमाएं डॉ. हरि सिंह गौर पुरातत्व संग्रहालय, सागर एवं कुछ प्रतिमाएं महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में संग्रहीत हैं।

महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर की स्थापना 1975 ई में मध्य प्रदेश के पहले संग्रहालय के रूप में हुई थी, जो सम्प्रति छत्तीसग्ढ़ षासन द्वारा संचालित है। 1954 एवं 1956 के मध्य सिरपुर से प्राप्त पांच धातु प्रतिमाएं और मिली थीं। संग्रहालय में अद्यतन संग्रहीत धातु प्रतिमाओं का विवेचन निम्नवत है-

1. तारा की धातु प्रतिमाएं

सिरपुर से प्राप्त दफीने में तारा की दो धातु प्रतिमाएं प्राप्त हुई थी, जिनका विवेचन निम्नवत है-

1) सिरपुर से प्राप्त तारा की इस धातु प्रतिमा की परिमाप 26.4ग21.8 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 3772 है।2 महायान सम्प्रदाय की देवी तारा की यह प्रतिमा जनास्वामी जी से प्राप्त हुई थी। देवी एक चौकी पर रखे कमल-कर्णिका पर आम्रवृक्ष के नीचे ललितासन में बैठी हैं। उनका दायां हाथ वरदमुद्रा में तथा बाएं हाथ में कमलनाल है। कमलनाल के शीर्षभाग पर दो फूल हैं- एक मुकुलित एवं दूसरा मुकुलावस्था में है। देवी फूल-पत्तों का मुकुट, माथे पर तिलक, रत्नकुण्डल, हार, भुजबंद, कंकण, कटिमेखला एवं पैरों में पायल से सुसज्जित हैं। प्रतिमा की प्रभावली अण्डाकार है। प्रतिमा में छत्र लगा था किन्तु सम्प्रति अप्राप्त है। 10वीं शती ई. में निर्मित इस प्रतिमा की पीठ पर बौद्धों का बीजमंत्र उत्कीर्ण है। हैं। सम्प्रति यह प्रतिमा महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में संग्रहीत एवं प्रदर्षित है। (देखिए चित्र 1)

2) सिरपुर से प्राप्त तारा की यह प्रतिमा मुनि कान्ति सागर के संग्रह में बतायी जाती है।3 तारा की यह प्रतिमा मुनि कान्ति सागर द्वारा बम्बई के भारतीय विद्याभवन को भेजी गई थी। 4 सम्प्रति मुनि जिन विजयजी के निजी संग्रह में है। ध्यातव्य हो कि तारा की यह प्रतिमा सिरपुर से प्राप्त सभी धातु प्रतिमाओं में सर्वोत्तम है, जिसकी ऊँचाई सर्वाधिक अर्थात 45 सें. मी. है। 5 इस प्रतिमा की बनावट एवं विशय योजना भी अनूठी है। ऊँचे सिंहासन पर तारा अभयमुद्रा में पद्मासनस्थ है। उसके वस्त्र एवं आभरण अतीव कलात्मक एवं सुरुचिपूर्ण हैं। प्रतिमा के पृष्टभाग में तोरणाकृति तकिया प्रदर्शित है। तकिया की आड़ी पट्टी के ऊपर प्रभामंडल के बीच कमल पर बैठे बुद्ध की प्रतिमा बनी है। बुद्ध के दोनों ओर एक-एक बोधिसत्व बने हैं। बुद्ध प्रतिमा युक्त प्रभामंडल के ऊपर कीर्तिमुख तथा छत्रयष्टि निर्मित है। बोधिसत्व प्रतिमाओं के ऊपर भी छत्रयष्टि दिखाई पड़ती है। तारा प्रतिमा के उभपार्श्वों में परिचारिका खड़ी हैं। चौकी पर सिंह का अंकन है, जिसके नीचे पूजा करते भक्त नैवेद्य सामग्री के साथ प्रदर्शित हैं। (देखिए चित्र 2)

(2) मंजुश्री की धातु प्रतिमाएं

बौद्धधर्म में मंजुश्री को बुद्धि एवं विद्या का देवता माना जाता है। बौद्ध देवकुल में मंजुश्री को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। महायानी मतानुयायियों के अनुसार इसकी पूजा से ज्ञान एवं बुद्धि का विकास होता है। मंजुश्री की सिरपुर से घातु की दो प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं-

1) सिरपुर से प्राप्त घातु निर्मित मंजुश्री की यह प्रतिमा महासमुंद के श्री यतनलालली द्वारा तत्कालीन मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री स्व. श्री रविषंकर षुक्ल जी को भेंट की थी। प्रतिमा की परिमाप 27.5ग25 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 3771 है।6 कमलासन पर ललितासनस्थ प्रतिमा का दायां पैर कमल-कर्णिका पर बनी पादपीठ पर और बायां पैर सामने मुड़ा हुआ है। प्रतिमा चौड़े ललाट, धनुषाकार भौहें, मत्स्याकार नेत्र, शुकनासिका, भरे हुए कपोल, गोलाकार मुख, कम्बुग्रीवा, चौड़ा स्कन्ध देश और क्षीणकटि से युक्त है। प्रतिमा का दायां हाथ वरदमुद्रा में एवं बांया हाथ कमलनाल युक्त है। उक्त कमलनाल में पत्र एवं मुकुट तो स्पष्ट है, लेकिन शीर्षस्थ भाग खण्डित हो जाने से प्रज्ञापारमिता ग्रंथ लुप्त हो गया है। प्रतिमा सादा जटाजूट, भुजबन्ध, यज्ञोपवीत, पत्रकुण्डल तांटक (कुण्डल), मध्य में हरितमणि-रक्तमणि युक्त हार, अगल-बगल में व्याघ्रनख, जिसमें चाँदी का जड़ाव किया गया है। लालमणि के जड़ाव से सुसज्जित प्रतिमा में स्थान-स्थान पर जड़े गये रत्न आज भी विद्यमान हैं। उक्त प्रतिमा उत्तरीय रहित एवं प्रभामण्डल युक्त है। प्रतिमा चौकी पर घुटने टेककर पूजारत भक्त अंकित हैं। सम्प्रति यह प्रतिमा महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में संग्रहीत एवं प्रदर्षित है, जिसका निर्माण काल 8-9वीं शती ई. अनुमानित है। (देखिए चित्र 3)

2) सिरपुर से प्राप्त धातु (सोना-चाँदी-ताम्र) निर्मित मंजुश्री की यह प्रतिमा रायपुर निवासी श्री बुलाकीलाल जी पुजारी से दान में प्राप्त हुई थी। इस प्रतिमा की परिमाप 39ग31.2 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 3770 है।7 चौकी पर रखे दोहरे कमल-कर्णिका पर मंजुश्री ललितासन में बैठे हैं। उनके बाएं हाथ में कमलनाल है, जिसके शीर्ष पर फुल्लित कमल पर बौद्ध ग्रंथ प्रज्ञापारमिता रखी हुई है। उनके माथे पर ताम्बे का लाल ऊर्णाबिन्दु है। आँखों में चाँदी का पानी चढ़ा है तथा ओठ तांबे से लाल किए हुए हैं। प्रतिमा के कुण्डल पूर्व प्रतिमाओं की अपेक्षा भिन्न है। उनके दाएं कान में पत्रकुण्डल एवं बाएं में तांटक (कुण्डल) है। मस्तक के ऊपर लगा छत्र अब अप्राप्त है। मुख मुद्रा सौम्य और षान्त है। शिरोभूशण सादा है। गले में बड़े-बड़े मोतियों की माला है, जिसके बीच में मध्यमणि और मध्यमणि के दोनों ओर एक-एक ब्याघ्रनख एवं पत्ररत्न हैं। अन्य आभूषण पूर्व प्रतिमाओं के अनुरूप हैं, किन्तु पैरों में घुंघघुरुओं वाली झांझ दृष्टव्य है। प्रतिमा धोती पहने हैं, परन्तु तन पर उत्तरीय नही हैं। प्रतिमा चौकी पर द्रोणादित्य नाम उत्कीर्ण है। प्रतिमा का निर्माण काल लगभग 8-9वीं शती ई. अनुमानित है।(देखिए चित्र 4)

(3) भूमि स्पर्ष मुद्रा में बुद्ध की धातु प्रतिमाएं-

पुरास्थल सिरपुर से भूमि स्पर्ष मुद्रा में बुद्ध की दो धातु प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं, जिनका विवरण निम्नवत है-

1) सिरपुर से प्राप्त इस प्रतिमा की परिमाप 45X28.5 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 0013 है।8 ऊँची चौकी पर अवस्थित दोहरे कमलासन पर भूमि स्पर्शमुद्रा (अक्षोभ्य) में बुद्ध बैठे हैं। उनका दायां हाथ भूमि स्पर्शमुद्रा में है, जबकि बायें हाथ में संघाटी का छोर है। बुद्ध का चेहरा सौम्य, शांन्त एवं प्रभावपूर्ण है। उनकी कम्बुग्रीवा, लम्बकर्ण, ऊर्णा एवं घुंघराले बाल उष्णीशबद्ध दृष्टव्य हैं। मस्तक के पीछे प्रभामंडल द्वादश कमलदल कमल-कर्णिका से सुषोभित है, जिसके ऊपर छत्रविहीन यष्टि दृष्टव्य है। प्रतिमा के पीछे तोरणाकृति तकिया है, जो दो खड़ी पट्टियों पर एक आड़ी पट्टी रखकर बनायी गई है। उल्लेखय है कि लगभग ऐसी ही तकिया नालन्दा की अवलोकितेश्वर प्रतिमा एवं कुर्किहार की बुद्ध प्रतिमा में मिलती है।9 तकिया की पट्टी पर चतुर्दश कमल तथा बेल-बूटे और दोनों किनारों पर मुकुल एवं हाथी के मुखवाला मकर बना है। इसी पट्टी की पीठ पर 8-9वीं शती ई. की नागरी लिपि में बौद्धों का बीजमंत्र उत्कीर्ण है। खड़ी पट्टियों पर मंगल कलश, जिनके मध्य पुष्पमालाएं लटक रही हैं तथा किनारों पर ससवार गज-व्याल का अंकन है। प्रतिमा चौकी पर आच्छादन पड़ा है। सामने प्रदर्षित सिंह जोड़ी के मध्य द्रोणादित्य नाम उत्कीर्ण है। (देखिए चित्र 5)

2) दूसरी प्रतिमा की परिमाप 43.8X25.3 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 0014 है।10 तांबे की इस कलाकृति में बुद्ध चौकी पर उलटे कमल पर भूमि स्पर्शमुद्रा में बैठे हैं। उनका दायां हाथ नीचे लटक रहा है, जबकि बायां हाथ संघाटी का छोर पकड़े गोद में है। बुद्ध के माथे पर चाँदी की ऊर्णा बिन्दु है और ओठों पर तांबे से की गई लिपाई है। उनके कान लम्बे और केश उष्णीशबद्ध हैं। प्रतिमा पर सोने का मुलम्मा चड़ा हुआ है। इसकी बनावट सादी एवं प्रभामंडल नये प्रकार का है तथा अण्डाकार है, जो बुद्ध के सम्पूर्ण शरीर के पीछे फैला हुआ है। उसमें से दोनों ओर पाँच-पाँच ज्वालाएं निकल रही हैं। मंडल की आन्तरिक पट्टी में कुण्डलाकार बेल-बूटे तथा मध्य में इक्कीस कमल बनाए गए हैं। प्रतिमा मस्तक के ठीक पीछे आम्र के पत्ते दिखाई दे रहे हैं, जो बोधिवृक्ष का भाव-बोध करा रहे हैं। प्रभामंडल के ऊपर छत्रविहीन कलशाकृति यष्टि दिखाई दे रही है। प्रतिमा की चौकी सादी है। (देखिए चित्र 6)

(4) बोधिसत्व वज्रपाणि की धातु प्रतिमा-

सिरपुर से बोधिसत्व वज्रपाणि की यह धातु निर्मित प्रतिमा महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में संग्रहीत प्रतिमाओं में सर्वश्रेष्ठ है। प्रतिमा सादी चौकी पर अवस्थित कमलकर्णिका पर ललितासन में आसनस्थ है, जिसकी परिमाप 42.5X44 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 0016 है।11 प्रतिमा का दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर आश्रित वरदमुद्रा एवं बायें हाथ में कमलनाल प्रदर्शित है। इस कमलनाल के शीर्ष पर मुकुल और उसके ऊपर वज्र का अंकन है। धनुशाकार भौंहें, सुडौल नासिका, भरे हुए कपोल, चौड़ी छाती, कम्बुग्रीवा और क्षीण कटिस्थल से शोभित बोधिसत्व के केशगुच्छ स्कन्धों पर लटक रहें हैं। राजकीय वेशभूषा से सुसज्जित प्रतिमा अलंकृत जटामुकुट, मकर और कर्णकुण्डल, गले में हँसुली और मोतियों की माला, भुजबन्ध, कंकण, कड़े, मेखला और रत्नजटित यज्ञोपवीत आदि अलंकरणों से युक्त है। प्रतिमा की आँखों में चाँदी का पानी चढ़ा है तथा ओठ तांबे से लाल किए हुए हैं। वृत्ताकार अलंकृत प्रभामण्डल का मध्यभाग सादा, जिसके चारों ओर गुरियों की किनार और किनार के चारों ओर ज्वाला सदृश किरणावली से सुशोभित है, जिसके ऊपर छत्रयष्टि, प्रभावली के पृष्ठभाग में बौद्धों का बीज मंत्र- 'ये धर्मा हेतु प्रभवा तेशाँ तथागतो ह्यदत्तेशांच या निरोध एवं वादी महाश्रमण' उत्कीर्णित है एवं प्रतिमा चौकी पर निर्माता का नाम द्रोणादित्य अंकित है। प्रतिमा का काल लगभग 8-9वीं शती ई. अनुमानित है। (देखिए चित्र 7)

(5) बोधिसत्व पद्मपाणि की धातु प्रतिमाएं-

सिरपुर से पद्मपाणि की तीन धातु प्रतिमाएं मिली है, जिनका विवरण निम्नवत है-

1) सिरपुर से प्राप्त इस बोधिसत्व पद्मपाणि प्रतिमा की परिमाप 39X30.8 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र.3768 है।12 सोने का पानी चढ़ी यह ताम्र प्रतिमा रायपुर के ही श्री सुखनंदनलालजी अग्रवाल (वकील) से दान में प्राप्त हुईर थी। यह प्रतिमा संग्रह की समस्त बोधिसत्व प्रतिमाओं सबसे बड़ी है। अन्य बोधिसत्व प्रतिमाओं की चौकियों से हटकर यह चौकी अलंकृत है तथा जिसके सामने की ओर दो सिंह बने हैं। उनके ऊपर कमल पर द्रोणादित्य का नाम उत्कीर्ण है। पद्मपाणि का आसन एवं मुद्रा पहले की प्रतिमाओं जैसे ही है, किन्तु उनके बाएं हाथ में धारित कमलनाल के पार्श्वभाग पर कर्णिका वाले प्रफुल्ल कमल के साथ एक अविकसित कमल भी है। पद्मपाणि के जटाजूट पर अमिताभ बुद्ध की छोटी सी प्रतिमा दृष्टव्य है। गले में बड़े-बड़े मोतियों की माला तथा रत्न जड़ित हंसुली के अलावा प्रतिमा सर्वाभूशणों से सुसज्जित है। प्रतिमा में पूर्व में लगा छत्र अप्राप्त है। प्रतिमा का काल 8-9वीं शती ई. है। (देखिए चित्र 8)

2) सिरपुर से प्राप्त इस बोधिसत्व पद्मपाणि की प्रतिमा की परिमाप 24.5ग24 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 0021 है।13 ऊपर वर्णित बोधिसत्व प्रतिमाओं से अनेक बातों में भिन्न है। इसकी चौकी अधिक ऊँची है। बोधिसत्व के नेत्र भी पहले की अपेक्षा विस्तृत हैं क्योंकि कलाकार उन्हें आयताकार बनाना चाहता था। प्रतिमा के ओंठ भी अधिक मोटे हैं और क्रमश मकरकुण्डल तथा पत्रकुण्डल के साथ मोतियों की लड़ी से बनी यज्ञोपवीत इस प्रतिमा की विशेषताओं में से एक है। प्रतिमा के जटाजूट पर अमिताभ की प्रतिमा भी नही है। प्रतिमा का काल 8-9वीं शती ई. है।(देखिए चित्र 9)

3) सिरपुर से प्राप्त इस बोधिसत्व पद्मपाणि की प्रतिमा की परिमाप 13.5X9.5 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 3769 है।14 चौकी विहीन यह ताम्र प्रतिमा रायपुर निवासी श्री जनास्वामी से प्राप्त हुई थी। इसमें अवलोकितेश्वर कर्णिका पर ललितासन में बैठे हैं। उनके बाएं हाथ में कमलनाल है किन्तु उसका ऊपर का भाग खण्डित है। सम्पूर्ण प्रतिमा पर सोने का पानी चढ़ा है। इस प्रतिमा की अन्य विशेषताएं उपर्युक्त वर्णित क्र. 1 के समान हैं जैसे मकरकुण्डल और रत्नकुण्डल, कन्धों तक लटकते केशगुच्छ, रत्नजड़ितहार, रत्नजटित यज्ञोपवीत, भुजबन्ध, कंकण, पैजन, से परिपूर्ण है। प्रतिमा की आँखों में चाँदी का पानी चढ़ा है तथा ओठ तांबे से लाल किए हुए हैं। बोधिसत्व की मुखमुद्रा सौम्य है। प्रतिमा के ऊपर छत्र लगा था, जो सम्प्रति अप्राप्त है। प्रतिमा का काल 8-9वीं शती ई. है।(देखिए चित्र 10)

(6) वैरोचन की धातु प्रतिमा-

सिरपुर उत्खनन से प्राप्त वैरोचन बुद्ध की एक छोटी धातु प्रतिमा प्राप्त हुई है।15 पद्मासनस्थ प्रतिमा कुंचित वामावर्त केश, धनुषाकार भौंहें, मत्स्याकार अर्धोन्मीलित नेत्र, शुकनासिका, सिंहहनु, गोलाकार मुख, ऊर्णा, सुसंवृत्तस्कंध, स्थितोऽवनत प्रलम्बकर्णपाश आदि विशेषताओं से युक्त व्याख्यान मुद्रा में प्रदर्षित है। न्यग्रोध परिमंडलकाय एवं सरलदीप्ति गात्र प्रतिमा के पृष्टभाग में प्रभामंडल उत्कीर्ण है। सम्प्रति यह प्रतिमा महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में संग्रहीत है, जिसका निर्माण काल 7वीं शती ई. अनुमानित है। वैरोचन बुद्ध की अन्य प्रतिमाएं मल्हार, तुरतुरिया से प्राप्त हुई हैं।16

(7) वरदमुद्रा में बुद्ध की धातु प्रतिमा-

सिरपुर से प्राप्त बुद्ध की धातु प्रतिमा की परिमाप 34.3X29.5 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 0020 है।17 सादी चौकी पर रखे दोहरे कमल- कर्णिका पर बुद्ध वरदमुद्रा में आसीन हैं। उनके दाएं हाथ की हथेली वरदमुद्रा में सामने है, जिसमें कोई फल रखा है। बायां हाथ संघाटी का छोर पकड़े गोद में स्थित है। धातु की प्राप्त अन्य प्रतिमाओं की भाँति इसमें भी केश घुंघराले और उष्णीशबद्ध, कर्ण लम्बायमान, आँखें चाँदी मढ़ी, ओंठ तांबे की ललाईयुक्त, कण्ठ कम्बुग्रीव और माथे पर ऊर्णा दृष्टव्य है। बुद्ध का उत्तरीय वस्त्र (संघाटी) उभरा हुआ है। प्रभामंडल गोल किन्तु खण्डित है। प्रतिमा का काल 8-9वीं शती ई. है। (देखिए चित्र 11)

(8) पद्मपाणि अवलोकितेष्वर की धातु प्रतिमा-

सिरपुर से प्राप्त यह प्रतिमा रायपुर निवासी श्री जनास्वामी से प्राप्त हुई है। इस पद्मपाणि अवलोकितेश्वर प्रतिमा की परिमाप 27.5X17 सें. मी. एवं अवाप्ति क्र. 0017 है।18 चौकी पर रखे कमल-कर्णिका पर अवलोकितेश्वर ललितासन में बैठे हैं। उनका दायां पैर नीचे लटक रहा है, जो चौकी पर अलग से जोड़े गए कमलाकृति पादपीठ पर आश्रित है। बायां पैर सामने मुड़ा हुआ है। अवलोकितेश्वर का दायां हाथ वरदमुद्रा में दाहिने घुटने पर सम्मुख ऐसे अवलम्बित है, जैसे वे दान दे रहे हैं। बायां हाथ बाएं पैर के पीछे कर्णिका पर टेक लगाकर अवलम्बित है। इसमें पकड़ा हुआ कमलनाल ऊपर तक जाकर मुकुलित है तथा जिसके पत्र बोधिसत्व के बाएं कन्धे के पास दिखाई दे रहे हैं। प्रतिमा शिरोभूशण से अलंकृत है और केशगुच्छ कन्धों तक लटक रहे हैं। उनके बाएं कान में मकरकुण्डल एवं दाएं कान में रत्नकुण्डल तथा माथे पर ऊर्णा प्रदर्षित है। आँखों में चाँदी का पानी चढ़ा है तथा पुतलियों में रत्न जड़े थे। उनका ओंठ तामिया है। प्रतिमा रत्नजड़ित हार, भुजबंद, कंकण, रत्नजड़ित मेखला एवं अलंकृत धोती तथा उत्तरीय से आभूशित है। तन पर पड़ा यज्ञोपवीत बाएं हाथ की कलाई पर झूल रहा है। उसकी ब्रह्मग्रंथि में बड़ा सा रत्न जड़ा है। सादी चौकी पर प्रतिष्ठित प्रतिमा के पीछे छत्र लगा था, जो अब अप्राप्त है। सम्प्रति यह प्रतिमा महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर में संग्रहीत है। (देखिए चित्र 12)

उपरोक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त सिरपुर में पद्मश्री डॉ. अरुण कुमार शर्मा के निर्देशन में सम्पन्न उत्खनन वर्ष 2004 में टीला क्र. एसआरपी 10 से 7 एवं वर्ष 2008 में 79 धातु प्रतिमाओं का एक बड़ा दफीना मिला, जिसमें बुद्ध, तारा, मैत्रेय, वज्रपाणि, रत्नपाणि, जंभल, वसुधारा, मंजुश्री, प्रज्ञापारमिता आदि महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएं हैं।19 ध्यातव्य हो कि सिरपुर से प्राप्त अधिकांश प्रतिमाएं सम्मुख दर्शन में बनी हैं तथा सांचे में ढालकर बनायी गयी हैं। तत्पश्चात आवश्यकतानुसार आभूषणों में मूल्यवान रत्न जड़े गए हैं।

हरिसिंह गौर पुरातत्त्व संग्रहाल में संग्रहीत धातु प्रतिमाएं-

डॉ. हरिसिंह गौर केन्द्रीय विष्वविद्यालय, सागर के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के अन्तर्गत स्थापित हरिसिंह गौर संग्रहालय में भी सिरपुर से प्राप्त कुछ धातु प्रतिमाएं संग्रहीत हैं, 20 जिनका विवेचन निम्नवत है-

1) भूमि स्पर्शमुद्रा में बुद्ध प्रतिमा-

भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध ऊँची एवं चतुष्पाद चौकी पर दोहरे कमलासन पर पद्मासनस्थ हैं। प्रतिमा का बायां पैर योगमुद्रा में न होकर विश्रान्ति के अनुरूप थोड़ा बाहर निकला हुआ है। शारीरिक तालमान की दृष्टि से प्रतिमा सीधी न होकर दाएं ओर थोड़ा झुकी हुई है, जिससे कठोर तपःसाधना के विपरीत प्राकृतिक रूप से अंग संचालन की स्थिति में है। मस्तक विहीन प्रतिमा की केशराशि स्कन्ध तक विस्तीर्ण है तथा भुजबंद, ग्रैवेयक, उपवीत आदि अलंकरणों से सुशोभित है। प्रतिमा के पृष्टभाग में प्रभावली अधिष्ठान से संलग्न होकर बनी है। प्रतिमा के शिरोभाग में छत्र का विशिष्ट अंकन है।

2) वरदमुद्रा में बुद्ध-

प्रतिमा दोहरे कमल कर्णिका की पीठ पर पद्मासनस्थ है। प्रतिमा का शिरोभाग एवं बायीं भुजा सहित खण्डित है। दायां हाथ वरदमुद्रा में जंघा पर अवस्थित है। प्रतिमा के अलंकरणों में अंगद एवं उपवीत दृष्टव्य हैं।

3) बुद्ध प्रतिमा का ऊर्द्धभाग-

यह बुद्ध प्रतिमा का ऊर्द्धभाग है, जिसमें हस्त एवं कटि से नीचे का भाग पूर्णतः भग्न है। मस्तक पर उष्णीशबद्ध है। प्रतिमा का शारीरिक-सौष्ठव पुष्ठ है। तन पर यज्ञोपवीत दृष्टव्य है।

4) अभिलिखित प्रतिमा अधिष्ठान-

यह किसी प्रतिमा का अधिष्ठान है, जो आयताकार एवं दोहरे संकुचित रूप में निर्मित है। पूर्ण अलंकृत अधिश्ठान के अग्रभाग पर गुप्त कालीन ब्राह्मी लिपि एवं शैली में पारम्परिक बौद्ध बीज मंत्र उत्कीर्ण है।

उपरोक्त सभी प्रतिमाएं 650-725 ई. के मध्य बनी हुई अनुमानित हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. महारानी वासटा का सिरपुर से प्राप्त शिलालेख, श्लोक 15-16, बालचन्द्र जैन, उत्कीर्णलेख, संचालनालय,
संस्कृति एवं पुरातत्त्व, छत्तीसगढ़, रायपुर, 2005, पृ. 36-43।
2. बुलेटिन आफ प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई, अंक 5, 1955-57, पृ. 8।
3. मुनि कान्ति सागर, खण्डहरों का वैभव, पृ. 152।
4. पूर्वोक्त, पृ. 289 एवं 432।
5. जैन, बालचन्द्र, महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय, पुरातत्त्व उपविभाग में संग्रहीत वस्तुओं का सूचीपत्र, भाग 3,
पृ. 12।
6. बुलेटिन आफ प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई, अंक 5, 1955-57, पृ. 87, चित्र फलक 6-ए।
7. पूर्वोक्त, पृ. 6 चित्र फलक 6-बी।
8. जैन, बालचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 1।
9. एंश्येण्ट इंडिया, अंक 12, चित्रफलक 15बी, और आर्ट आफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान, फलक 31, चित्र 336।
10. पूर्वोक्त, पृ. 2।
11. जैन, बालचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 5-6।
12. पूर्वोक्त, पृ. 4-5।
13 पूर्वोक्त, पृ. 5।
14. बुलेटिन आफ प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई, अंक 5, 1955-57, पृ. 5, चित्र फलक 3-बी एवं जैन,
बालचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 4।
15. नागवंशी, डॉ. चैन सिंह, छत्तीसगढ़ की बौद्धकला, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इंदिरा कला संगीत विष्वविद्यालय, खैरागढ़, 2012, पृ. 70।
16. पूर्वोक्त, पृ. 82 एवं 94।
17. जर्नल आफ इंडियन म्युजियम्स, अंक 8, 1852, पृ. 109।
18. महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय, पुरातत्त्व उपविभाग में संग्रहीत वस्तुओं का सूचीपत्र, भाग 3, पृ. 3।
19. कोसल, अंक 4, 2011, श्री जी. एल. रायकवार का लेख- सिरपुर की शिल्पकला, पृ. 43-51।
20. कला वैभव, अंक 9-10, प्रो. सुधाकर नाथ पाण्डेय का लेख- सिरपुर की बौद्ध कास्य प्रतिमाएं, पृ. 67-69।

प्रो. आर. एन. विश्वकर्मा

पूर्व विभागाध्यक्ष, प्रा. भा. इ., संस्कृति एवं पुरातत्त्व इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़।
ए/18, गंगा सदन, कुसुम नगर (मुदलियार कालोनी) राजनांदगाँव- 491441, छत्तीसगढ़।

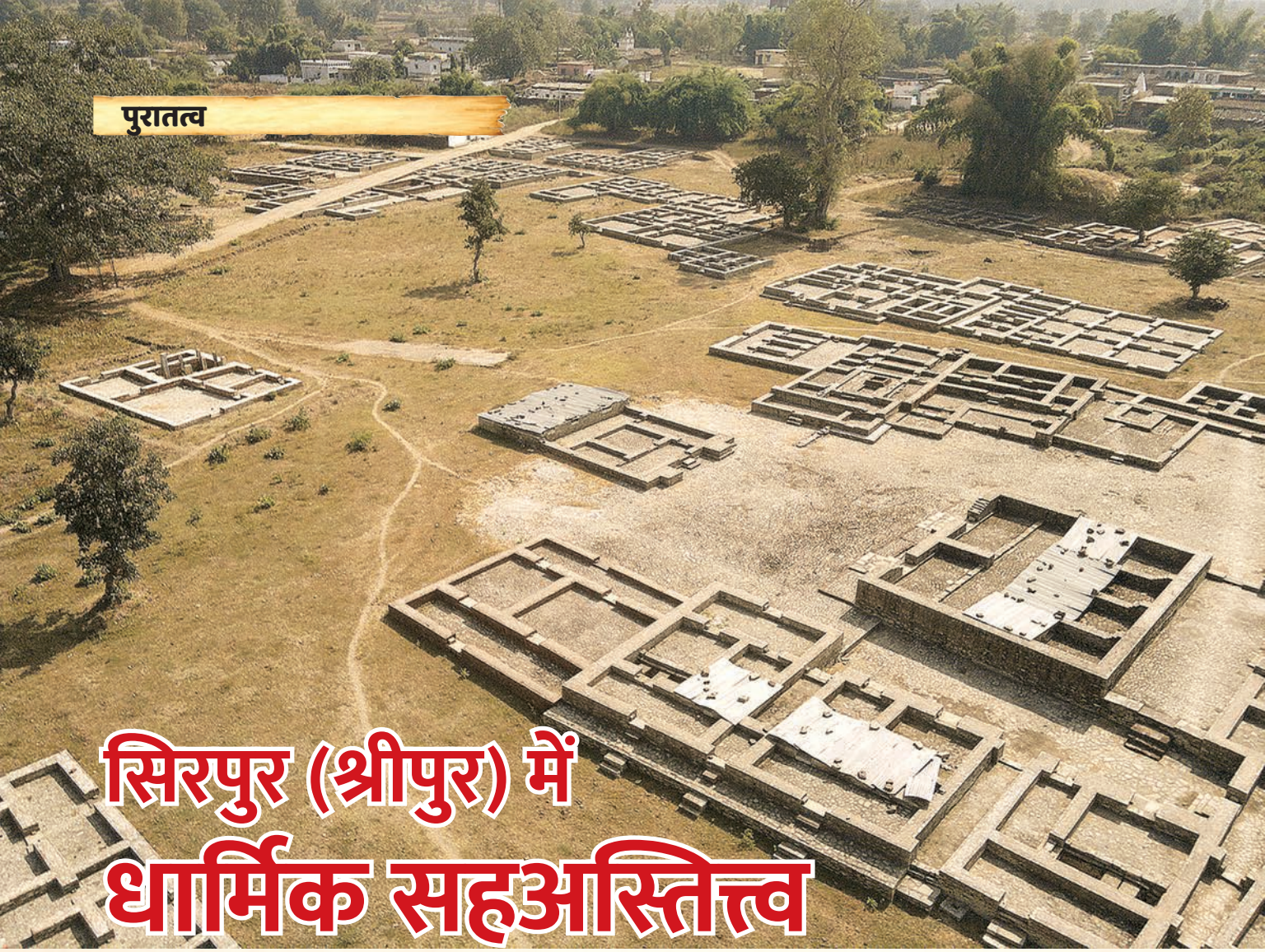

सिरपुर (श्रीपुर) में धार्मिक सहअस्तित्व

मध्यभारत में स्थित गुप्तोत्तरयुगीन श्रीपुर नगर, जो यथा नाम तथा गुण, इस कहावत को अक्षरशः चरितार्थ करता था। छत्तीसगढ़ के महासमुंद जिले में महानदी के तट पर पंद्रह सौ साल पहले आबाद, इस राजधानी नगर में 'महा' से कम कुछ था भी नहीं। कभी दक्षिण कोसल राज्य की राजधानी रही सिरपुर के इतिहास और पुरातत्त्व को समग्रता में समझने के लिए उसके धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं की अनदेखी नहीं की जा सकती।

सिरपुर के इतिहास पर कार्य करने वाले अध्येताओं का यह सामान्य प्रेक्षण रहा है कि सिरपुर के शासकों ने विभिन्न मत-मतावम्बियों को सदैव प्रोत्साहन दिया। उनके धार्मिक विचारों और मान्यताओं को स्वीकृति प्रदान की। फलस्वरूप दक्षिण कोसल भौतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पहले की अपेक्षा अधिक समृद्ध हुआ और प्रजा की आध्यात्मिक उन्नति भी हुई।

इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण खोजे जा सकते हैं जिसमें यह देखा गया है कि शासक की व्यक्तिगत आस्था-मान्यता चाहे किसी धर्म-सम्प्रदाय में हो, यदि राजसत्ता धर्म-सहिष्णु और उदार हो तो वह प्रजा और राज्य की सर्वांगीण उन्नति का हेतु बनता है, वहीं इसके विपरीत स्थिति में सर्वथा पतन और विनाश का कारण। सिरपुर से पूरे दक्षिण कोसल पर राज करने वाले और पड़ोसी राज्यों से शक्ति संतुलन कर प्रजा की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने वालों में शरभपुरिया राजवंश का उल्लेख पहले आता है जिन्होंने 5वीं-6वीं शताब्दी ईस्वी के दौरान शासन किया। उन्हीं के अभिलेखों से पहली बार यह पता चला

कि सिरपुर का वास्तविक नाम 'श्रीपुर' हुआ करता था। उनके बाद सोमवंश के राजाओं ने 6वीं से 8वीं शताब्दी ईस्वी के दौरान इस प्रदेश को उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। उस समय के सिरपुर का वैभव यहाँ के सैकड़ों टीलों, मंदिरों, विहारों, मठ, आवासीय और व्यवसायिक भवनों के उद्घाटित भग्नावशेशों में समाया हुआ है।

आज सिरपुर को खुली आंखों से देखकर श्रीपुर की समृद्धि का पता लगाना मुश्किल है। यह तभी संभव है, जब प्रेक्षक, आंखें बंद कर समय की यात्रा करके स्वयं को 1500 साल पहले के श्रीपुर नगर में खुद को महसूस करता है। पहली नजर में यह भारत के किसी भी आम कस्बे जैसा ही दिखता है। जो चीज सिरपुर को इतिहास और पुरातत्व के अध्ययन के लिए अद्वितीय बनाती है, वह है सिरपुर के चहुँओर बिखरी हुई ईंट-पत्थरों के भग्नावशेश और धातु की शिल्पाकृतियाँ, जो इसके राजनय, व्यापार, धर्म, वास्तुकला और तकनीकी कौशल का केंद्र होने का परिचायक है।

खुदाई के बाद, यहाँ पर बड़ी संख्या में धार्मिक और नागरक वास्तुशिल्प के अवशेश उजागर हुए हैं जिनमें मूर्तियाँ और कई अन्य कलाकृतियां भी शामिल हैं। सिरपुर से प्रतिवेदित तत्कालीन सभ्यता के पुरातत्वीय साक्ष्यों से यह पता लगता है कि तत्समय विद्यमान तीन प्रमुख भारतीय धर्मों ब्राह्मण, बौद्ध और जैन के बीच अतुलनीय सद्भाव व समन्वय रहा था। इसने शरभपुरीय और सोमवंश के काल में लगभग 300 वर्षों तक व्यापारिक समृद्धि, आंतरिक शांति, मूर्तिकला और स्थापत्यकला की समृद्धि के साथ एक स्वर्ण युग का अनुभव किया था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 639 ईस्वी में सिरपुर का दौरा किया था। यह उस समय, शिक्षा के क्षेत्र में सिरपुर की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का द्योतक है।

वैदिक परंपरा से उद्भूत ब्राह्मण या हिंदू धर्म को दुनिया के सबसे पुराने धर्मों में से एक माना जाता है। इसका मूल विश्व के सबसे प्राचीन संस्कृत संहिताओं अर्थात् चार

वेदों- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में निहित है। वेदों ने 1700 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक ब्राह्मण धर्म को आकार दिया। इसके बाद, यह धीरे-धीरे हिंदू धर्म के विभिन्न संप्रदायों- शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य और शण्मुख में विकसित हुआ। हिंदू धर्म के ये विभिन्न संप्रदाय त्रिमूर्ति या त्रिदेवों अर्थात् सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, संरक्षक विष्णु और विध्वंसक शिव के इर्द-गिर्द घूमते हैं। हिंदू त्रिमूर्ति ने वैदिक धर्म से लेकर पौराणिक हिंदू धर्म तक के विकास का प्रतिनिधित्व किया। हिंदू धर्म के ये त्रिमूर्ति और पांचों संप्रदाय के मंदिर और मूर्तियाँ सिरपुर में देखे जा सकते हैं जो हिंदू धर्म के विभिन्न संप्रदायों के बीच वैचारिक समन्वय को उजागर करते हैं।

शैव मत में शिव ही मुख्य देवता हैं जिनके प्रतीकात्मक (शिवलिंग) और विभिन्न अवतारी स्वरूपों (सौम्य और रौद्र) की उपासना की जाती थी। साथ ही यहाँ शैव परिवार के अन्य देवी-देवताओं उमा, गणेश, कार्तिकेय और यहाँ तक की नंदी को भी महत्व दिया गया है। सिरपुर की कला में विष्णु, दस अवतारों के साथ दिखाई देते हैं। हिंदू धर्म के उपरोक्त दोनों संप्रदाय हिंदू त्रिमूर्ति से संबद्ध हैं, जबकि शाक्त, गाणपत्य और शण्मुख पूजा की जड़ें शैव धर्म में निहित हैं जो बाद में अलग-अलग संप्रदायों में विकसित हुईं। सौर सम्प्रदाय के उपास्य सूर्य देव की पूजा भी वैदिक धर्म से ली गई है।

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में भारत में हुई। इस धर्म के अनुयायी गौतम बुद्ध के उपदेश और दर्शन का अनुसरण करते हैं, जिसका लक्ष्य आत्मज्ञान द्वारा पुनर्जन्म के पीड़ा चक्र से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त करना है। निर्वाण की इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए, बौद्ध अनुयायी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपना जीवन बुद्ध द्वारा बताये तरीके से जिए।

बौद्ध धर्म तीन प्रमुख संप्रदायों में विभाजित है- हीनयान, महायान और वज्रयान। हीनयान में, अनुयायियों से बुद्ध की शिक्षाओं का सख्ती से पालन करने और बुद्ध के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे जन्म, तप, संबोधि, और निर्वाण से संबंधित शुभ प्रतीकों जैसे क्रमशः गज, बोधि (बरगद) वृक्ष, चक्र और स्तूप की पूजा करने की अपेक्षा की जाती है। महायान, बौद्ध धर्म का सर्वाधिक लोकप्रिय संप्रदाय है, जो अनुयायियों से अपेक्षा करता है कि वे महात्मा बुद्ध के स्वरूप की भगवान के रूप में पूजा करें।

तीसरा महत्वपूर्ण प्राचीन भारतीय धर्म श्रमण परंपरा का जैन धर्म है। इसमें पाँच सिद्धांतों के पालन का बहुत महत्व है- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। 24 तीर्थंकरों की परंपरा के साथ जैन धर्म की प्राचीनता वैदिक धर्म जितनी ही मानी जाती है। इनमें 23वें और 24वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और महावीर ऐतिहासिक व्यक्तित्व माने जाते हैं। बाद में जैन धर्म भी दो शाखाओं में विभाजित हो गया- दिगंबर और श्वेतांबर। प्राचीन मानव संस्कृति धर्म आप्लावित रहा है। इतिहास गवाह है कि धर्म में प्रतिद्वंद्विता, विरोध और युद्ध आरंभ करने की क्षमता है। यद्यपि, उपरोक्त तीनों प्रमुख प्राचीन भारतीय धर्मों को उतना धार्मिक संघर्ष नहीं करना पड़ा जितना कि अन्य पश्चिमी धर्मों ने किया।

धार्मिक सहअस्तित्व का एक महत्वपूर्ण संभावित कारण यहाँ के प्रजाजन पर शासक वर्ग का प्रभाव था। शरभपुरीय शासक परंपरागत रूप से विष्णु के उपासक थे। वहीं, सोमवंश में नन्नदेव प्रथम और महाशिवगुप्त बालार्जुन जैसे शासक 'परममाहेश्वर' अर्थात् शिव के अनुयायी थे, जबकि अन्य शासक जैसे तीवरदेव और हर्षगुप्त 'परमवैष्णव' अर्थात् विष्णु के उपासक थे।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजपरिवार एवं

तत्कालीन समाज में व्यक्ति को अपना ईष्टदेव स्वयं चुनने की स्वतंत्रता थी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि शासक वर्ग स्वतंत्र रूप से अपने धर्म का पालन करने में सक्षम था, जिससे समाज के बाकी लोगों को भी स्वतंत्र रूप से पूजा करने की स्वतंत्रता स्वाभाविक रूप से मिल जाती थी। संभवतः इस स्वतंत्रता ने ही विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के बीच सद्भाव और सहिष्णुता के विचार को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी।

सिरपुर में हुए पुरातत्वीय उत्खनन के दौरान प्राप्त स्थापत्य और शिल्पकला तथा अन्य प्रमाणों में तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है, जिससे एक बात तो तय है कि सिरपुर में विभिन्न धर्मों का स्पष्ट प्रतिनिधित्व था। सिरपुर में हिंदू धर्म के पांच संप्रदायों में सर्वाधिक मंदिर और मूर्तियां शैव धर्म संबंधी पाई गईं हैं। प्रसिद्ध लक्ष्मण मंदिर वस्तुतः विष्णु को समर्पित है। वहीं चामुण्डा मंदिर शाक्त धर्म का केन्द्र था। सुरंग टीला पंचायतन शिव मंदिर के महामंडप के स्तंभों पर, विष्णु के नृसिंह अवतार और देवी महिसासुरमर्दिनी की प्रतिमा उत्कीर्ण है तथा दक्षिणी गर्भगृह में गणेश प्रतिमा स्थापित है। वहीं पश्चिमाभिमुखी तीन मंदिरों में से मध्यवर्ती गर्भगृह की द्वाराशाखा में रामायण के कथानकों का अंकन मिलता है। इस तरह इस शिव मंदिर में वैष्णव, शाक्त और गाणपत्य प्रतिमाओं की उपस्थिति ब्राह्मण धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य सहअस्तित्व का जीवंत उदाहरण है।

शैव और शाक्त मंदिरों में एक-दूसरे के धार्मिक तत्त्वों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति स्पष्टतः देखी जा सकती है। चामुंडा मंदिर के द्वारशाखा पर शिव के विविध स्वरूपों यथा उमामहेश्वर, रावणानुग्रह, गजासुरसंहारक सहित अर्द्धनारीश्वर की भी मूर्ति का अंकन है, जो शैव और शाक्त धर्म के मध्य साम्प्रदायिक सौहार्द्र और समन्वय को दर्शाता है। सिरपुर में सूर्योपासना के प्रमाण अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा कम ही हैं। सूर्य की बस्ता मूर्तियों से लेकर आदमकद मूर्तियां सिरपुर में विद्यमान हैं किन्तु स्वतंत्र मंदिर अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। इससे प्रतीत होता है कि सौर धर्म, ब्राह्मण धर्म के अन्य सम्प्रदायों का सहचर रहा है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो सिरपुर में शैव धर्म के बाद बौद्ध धर्म की उपस्थिति सर्वाधिक उल्लेखनीय है। ह्वेनसांग के यात्रा विवरण के अनुसार, 639 ईस्वी में उनकी सिरपुर यात्रा के समय यहाँ लगभग 100 बौद्ध विहार थे। उत्खनन में बौद्ध धर्म के तीनों संप्रदायों के साक्ष्य मिले हैं। हीनयानी, स्तूपों की पूजा करके अपने धर्म का पालन करते थे। यहाँ से मृण्मय, प्रस्तर और धातु निर्मित विभिन्न आकार के पूजित स्तूप मिले हैं। वहीं साथ में महायानी और वज्रयानी सम्प्रदाय के देवी देवताओं की मूर्तियाँ उल्लेखनीय संख्या में बरामद हुई हैं, जो सीधे तौर पर तीनों बौद्ध सम्प्रदायों के मध्य सह-अस्तित्व को दर्शाता है।

सिरपुर में जैनोपासना के प्रमाण, ब्राह्मण और बौद्ध धर्म की तुलना में कम है, तथापि सिरपुर, आरंग, राजिम, खरोरा आदि समकालीन ऐतिहासिक स्थलों पर उपलब्ध शिल्प साक्ष्यों से यह विदित होता है कि दक्षिण कोसल के समाज में जैन धर्म का भी बहुत प्रभाव रहा है। तत्कालीन जैन समाज, बौद्ध और ब्राह्मण धर्मानुयायियों के साथ-साथ अपना आध्यात्मिक उत्थान कर रहा था। उनके मध्य द्वंद, प्रतिस्पर्धा अथवा संघर्ष के कोई प्रमाण नहीं मिलते।

उत्खनन में मिला जैन विहार, महानदी के किनारे एक पंचायतन शिव मंदिर के बहुत पास स्थित है। उनके मध्य केवल एक दीवार का फासला है जिसमें आवागमन के लिए द्वार है, अर्थात जैनभिक्षु और शैव मतावलंबी, एक-दूसरे के धर्मस्थल पर बेरोकटोक आ जा सकते थे। जैन विहार और शिव मंदिर का बिल्कुल आसपास होना, दोनों के बीच धार्मिक सहअस्तित्व को स्पष्ट रूप से उजागर करता है। उपलब्ध पुरातत्वीय साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिरपुर में शासक और प्रजा दोनों वर्गों का सबसे लोकप्रिय धर्म शैव धर्म था।

पौराणिक साहित्य में शैव और वैष्णव संप्रदायों के मध्य कटुता के अनेक प्रसंग मिलते हैं। फलस्वरूप मूर्तिशिल्प में भी इसका परिणाम हिरण्यकश्यप और

शरभेश प्रतिमाओं के रूप में प्रकट हुआ। किन्तु सिरपुर उत्खनन से जुडवां गर्भगृह वाले मंदिर मिले हैं, जो स्थापत्य कला की दृष्टि से विशिष्ट है। इस तरह के कुल पाँच मंदिर सिरपुर में मिले हैं। इन मंदिरों के एक गर्भगृह में विष्णु का अर्चाविग्रह और दूसरे में शिवलिंग का संस्थापन है। अर्थात् इन देवालयों में शिव और विष्णु भक्त एक साथ पूजा-अनुष्ठान करते थे।

इस प्रकार के मंदिरों को युगल मंदिर या हरिहर मंदिर कहा गया है। ये मंदिर ब्राह्मण धर्म के शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के मध्य सौहार्द्रपूर्ण संबंधों का द्योतक है। शिलालेखों से ज्ञात होता है कि शासक वर्ग मंदिरों का निर्माण अपने माता-पिता और स्वयं के पुण्य की अभिवृद्धि के लिये किया करते थे। सिरपुर के पाण्डुवंश (सिरपुर) की वंशावली में हम पाते हैं कि हर्षगुप्त विष्णु के उपासक थे, वहीं उनके पुत्र महाशिवगुप्त शैव अनुरागी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त प्रकार के मंदिरों के निर्माण के पीछे शासक परिवार के इस उदार धार्मिक दृष्टिकोण का अवश्य कुछ प्रभाव रहा होगा। सिरपुर के प्राचीन स्मारक, मूर्तियां और अभिलेख न केवल एक ही धर्म के विभिन्न संप्रदायों के मध्य, बल्कि विभिन्न धर्मों के बीच भी धार्मिक सहअस्तित्व के विशय में मुखर हैं। धार्मिक सौहार्द्र का एक उदाहरण सोमवंशी राजा नन्नदेव द्वितीय प्रस्तर अभिलेख है जिसमें उल्लेख है कि उनके पूर्ववर्ती राजा भवदेव रणकेशरिन ने सुगत (बुद्ध) के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था, जिसे मूल रूप से एक अलग राजवंश के सूर्यघोश नामक राजा ने बनवाया था।

इस अभिलेख से यह भी पता लगता है कि भवदेव रणकेशरिन जो सोमवंश के राजा थे और शैव मतानुयायी थे, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने संसाधनों का उपयोग एक बौद्ध मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए किया था। सोमवंश के ही तीवरदेव ने बौद्ध विहार का निर्माण करवाया था। महाशिवगुप्त बालार्जुन ने सिरपुर के बौद्ध (आनंदप्रभ कुटी) विहार और उनके मामा भास्कर वर्मा ने मल्हार के समीप भिक्षुणी विहार बनवाया था। सिरपुर के शैव और वैष्णव अनुयायी शासकों द्वारा बौद्ध धर्म को प्रश्रय देने के कारण शैव, वैष्णव और बौद्धों के बीच धार्मिक सद्भाव में वृद्धि हुई और उन्हें बिना किसी चिंता के स्वतंत्र रूप से अपने-अपने धर्म का पालन करने में सक्षम बनाया।

विभिन्न धर्मो के मध्य इस समन्वय का स्पष्ट प्रभाव सिरपुर के स्थापत्य और मूर्तिकला में देखा जा सकता है। तीवरदेव विहार के द्वारशाखा के ललाटबिम्ब के केन्द्र में, बौद्ध धर्म के अन्य देवी-देवताओं के साथ वैष्णव धर्म की देवी गजाभिशिक्त लक्ष्मी का अंकन किया गया है। यह वैष्णव और बौद्ध धर्म के बीच धार्मिक सहिष्णुता का उल्लेखनीय उदाहरण है। उसी प्रकार सिरपुर से ज्ञात बौद्ध कांस्य मूर्तियों में ब्राह्मण धर्म के देवी-देवताओं के प्रतिमालक्षण का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। यह बौद्धों और हिंदुओं के धार्मिक आचार-विचार में परस्पर सम्मान के स्तर को दर्शाता है।

सोमवंशी राजा हर्षगुप्त और उनकी रानी वासटा के पुत्र महाशिवगुप्त बालार्जुन, दक्षिण कोसल के सबसे महाप्रतापी राजा थे। रानी वासटा जो मगध की राजकुमारी थीं और बौद्धानुयायी थीं, ने अपने दिवंगत पति जो परमवैष्णव थे, की याद में लक्ष्मण मंदिर बनवाया था, जो वस्तुतः विष्णु मंदिर था। इस तरह देखा जाए तो वैष्णव पिता और बौद्ध माता के पुत्र महाशिवगुप्त को धर्मसहिष्णुता का संस्कार विरासत में मिला था और उनके स्वयं का धार्मिक विचार उन दोनों से भिन्न था क्योंकि वे शिव के भक्त थे। सोमवंशी राजाओं ने न केवल मठिका और विहारों के निर्माण में उल्लेखनीय योगदान दिया वरन वहाँ के शैक्षणिक गतिविधियों के संचालन के लिए ग्रामदान और भूमिदान भी दिये थे।

सिरपुर में धार्मिक सद्भाव के कई प्रमाणों के बीच कुछ ऐसे छिटपुट उदाहरण भी सामने आए हैं जिन्हें धार्मिक संघर्ष के तौर पर देखने का प्रयास किया गया। डॉ. एम.जी. दीक्षित ने 1955-56 में सिरपुर की खुदाई के बाद यह मत व्यक्त किया था कि आनंदप्रभ कुटी विहार के निर्माण के लगभग दो सौ साल बाद, बौद्धों को शैव अनुयायियों ने विहार से जबरन निष्कासित कर दिया था। डॉ. दीक्षित का यह विचार विहार के उत्खनन से प्राप्त परवर्ती काल के कुछ ब्राह्मण मूर्तियों पर आधारित था। लेकिन डॉ. एस.एल. कटारे यह मानते हैं कि बौद्ध विहार से प्राप्त हिन्दू मूर्तियाँ संघर्ष की निशानी नहीं है बल्कि विभिन्न धर्म के उपासकों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का प्रमाण है।

सिरपुर के अलावा दक्षिण कोसल के अन्य समकालीन नगरों मल्हार, आरंग, पुजारीपाली और राजिम में भी हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मो के मध्य समन्वय दिखाई देता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सिरपुर के सोमवंशी राजाओं ने पूरे दक्षिण कोसल राज्य में धार्मिक सहअस्तित्व स्थापित करने में सफल रहे। परिणामस्वरूप, पूरे राज्य में शांति और समृद्धि आई। इस प्रकार, सिरपुर में हिंदू, बौद्ध और जैन समुदायों ने न केवल एक-दूसरे के धार्मिक मान्यताओं को सम्मान दिया बल्कि अपने धर्मस्थलों में उन्हें स्थान देकर सहिष्णुता और सद्भाव को बढ़ावा दिया। हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों की जड़ें भारतभूमि में हैं और इनके मूल में अनेक साझा विचारों का संगम है। इसलिए इनमें सह-अस्तित्व होना असामान्य नहीं है। हमेशा से ही धर्म ने किसी भी समाज के आचार-विचार के निर्धारण में मुख्य भूमिका निभाई है। सिरपुर के वैभव और संपन्नता की एक बड़ी वजह, यहाँ के राजाओं का धर्मपरायण और सहिष्णु होना था जिससे प्रजा के विभिन्न मत-मतान्तरों वाले समुदायों के भीतर धार्मिक सहअस्तित्व से शांति कायम हुई।

प्रभात कुमार सिंह
पुरातत्वविद, पुरातत्व एवं संस्कृति संचालनालय, रायपुर छत्तीसगढ़

आदिमानवों की शरणस्थली
हितापुंगार घुमर

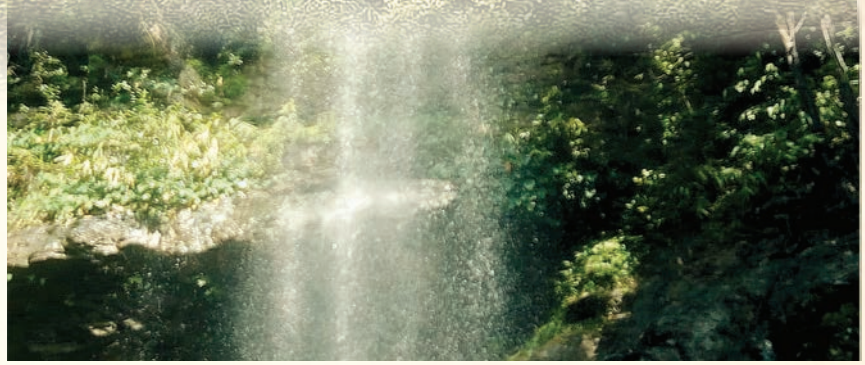

बस्तर अपनी जनजातीय संस्कृति एवं प्राकृतिक सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। बस्तर का प्रवेश द्वार केसकाल ही बस्तर की जनजातीय कला एवं संस्कृति, धरोहर के रूप में अनेक प्राचीन भग्नावशेष, कल-कल छल-छल करते झरने एवं जलप्रपात बस्तर की प्राकृतिक एवं पुरातात्विक वैभव का आभास करा देता है।

केसकाल में दर्जन भर से अधिक जलप्रपात और झरने हैं, किन्तु ये बाहरी दुनिया से अज्ञात या अल्पज्ञात ही हैं। इन्ही जलप्रपातों में से एक मोहक जलप्रपात है हिता पुंगार घुमर। यहां तक पहुंचने के लिए पहले केसकाल से 30 किलो मीटर दूर ग्राम धनोरा पहुंचना होगा। धनोरा से लगभग 6 किलोमीटर कोरकोटी नामक गांव है।

कोरकोटी गांव से जंगल एवं पहाड़ी रास्ते से पैदल चलना पड़ेगा तब आपको मिलेगा तुड़ेका मट्टा नामक पहाड़ी। इसी पहाड़ी पर है एक जलप्रपात जिसे हिता पुंगार घुमर के नाम से जाना जाता है। दूसरा मार्ग है राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित ग्राम बटराली से बावनीमारी, रावबेड़ा मारी, बेड़मा मारी, होते हुए उपरबेदी तक कच्चा मार्ग है।

इस मार्ग से जलप्रपात के समीप (पहाड़ी के ठीक ऊपर) तक दुपहिया वाहन से पहुंचा जा सकता है। चारपहिया वाहन भी जा सकता है लेकिन कुछ अवरोधों का सामना करना पड़ सकता है। जलप्रपात की सुन्दरता निहारने के लिए पहाड़ी के नीचे तक उतरना आवश्यक है। नीचे जाने के लिए गाईड के रूप में कोई ग्रामीण हो तो ज्यादा अच्छा है क्योंकि नीचे उतरने के लिए कोई सुगम मार्ग नही है।

बहुत दूर से चल कर चक्कर काटते हुए झाड़ियो के सहारे, पत्थरों पर सावधानी पूर्वक पैर रखते हुए उतरना पड़ता है। जलप्रपात तक पहुंचते ही नयनाभिराम दृश्य देख कर पहाड़ी यात्रा की सारी थकान स्वतः दूर हो जाती है। वैसे तो यह जलप्रपात बारहमासी है पर अक्टूबर से फरवरी तक का समय भ्रमण के लिए ज्यादा उपयुक्त है।

जलप्रपात के आस-पास ऊपर पठार तक पत्थरों की प्राकृतिक दीवार है। इस दीवार की अद्भुत संरचना प्रकृति की स्वभाविक कला धर्मिता को प्रदर्शित करती है। नीचे की ओर नजरें डालें तो गहरी खाई है, जो हरी भरी वादियों से ढंकी हुई है। दूसरी ओर नजर घुमाएं तो पूरा पहाड़ घने जंगलों से आच्छादित है।

जलप्रपात के आस-पास ऊँचे-ऊँचे इमली के पेड़ हैं। इमली को गोंडी जनभाषा में हिता और फूल को पुंगार कहते हैं अर्थात इमली के फूल को हिता पुंगार कहा जाता है। लम्बी अवधि तक खिले रहने वाले रक्तिम पीले रंग के ये इमली के फूल मोहक लगते हैं, संभवतः इन्ही इमली के मोहक फूलों के कारण इस जलप्रपात को हिता पुंगार (इमली फूल) घुमर कहते हैं।

जलप्रपात से कुछ ही दूरी पर पठार का एक भूमिगत जलधारा इन इमली के पेड़ों पर गिरता है, पेड़ों से टकरा कर जलधारा का पानी बिखर जाता है। और बिखर कर इमली की पत्तियों से फिसलता हुआ नीचे झरता है तो ऐसा लगता है मानों बिन बादल वर्षा हो रही है।

पत्थरों की संरचना के बीच-बीच में खोह है, ग्रामीणों द्वारा बताया जाता है कि ये खोह भालुओं का निवास स्थान है इसलिए इन गुफाओं को भालू गड़दा कहते हैं। (गुफा या सुरंग को स्थानीय लोग गड़दा कहते हैं) खोह में भालू हमेशा नही रहते फिर भी सुरक्षा के लिए सावधानी आवश्यक है।

जलप्रपात का स्वच्छ जल और पास में सुरक्षित खोह होने के कारण पहले यहां आदिमानवों का पसंदीदा निवास स्थान था। आस-पास हजारों वर्ष पूर्व आदिमानव द्वारा बनाये गये अनेक शैलचित्र हैं। इन शैलचित्रों में गलबहियां डाले युवक-युवतियां सामूहिकं नृत्य करते हुए दिखते हैं, नीचे हाथ के पंजो के निशान हैं।

अन्य शैलचित्र भी हैं दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि ये कोई यंत्र हैं या अस्त्र-शस्त्र हैं अथवा कुछ अन्य आकृति। अब तक शैलचित्रों का कोई विशेशज्ञ या जानकार यहां नहीं पहुंच पाया है। गहन अध्ययन एवं विश्लेशण के बाद ही इन शैलचित्रों के सम्बंध में कोई निश्चित अवधारणा बन सकती है। गेरुए रंग से बने ये शैलचित्र मानव दखलंदाजी न होने के कारण अभी तक सुरक्षित हैं।

लिंगदरहा जलप्रपात तक सुगम मार्ग होने के कारण लोगों का आना जाना ज्यादा है। शैलचित्रों के पुरातात्विक महत्व से अनभिज्ञ होने के कारण लोग छेड़छाड़ कर इन्हें विकृत कर रहे हैं, जिससे इन शैलचित्रों की मौलिकता नष्ट हो रही है। डर है कि यहां भी लोगों की भीड़ बढ़ने से पुरखों के इस धरोहर को छेड़छाड़ कर विकृत किया जा सकता है ।

हरी-भरी वादी, दीवार की तरह पत्थरों की अद्भुत संरचना, इन दीवारों के बीच खोह, गगनचुंबी इमली के पेड़, पुरातात्विक महत्व के शैलचित्र, भूमिगत जलधारा की फुहार, और बीच में लगभग 80 फुट ऊपर से गिरता हुआ उज्वल जलधारा, कलकल, छलछल निनाद करते हुए इस जलधारा का वादियों में विलुप्त हो जाना ये सब अद्भुत नजारा है। दिन में सूर्य का प्रकाश सीधा पड़ने से इस जलप्रपात में इन्द्रधनुष उभर आता है। जलप्रपात के आस-पास का दृश्य ही इन्द्रधनुषी है कहें तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। चारों ओर नजरें घुमायें तो इस नयनाभिराम दृश्य को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति सोलह श्रृंगार कर यहां बैठी है और अपनी सुन्दरता दिखाने के लिए सैलानियों की प्रतीक्षा कर रही है।

घनश्याम नाग
बहीगांव, कोण्डागाँव, बस्तर

सिरपुर उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं का अवलोकन

रत्नदेव और जाजल्लदेव की मुद्राएं

अग्रभाग पृष्ठभाग

भारत के विभिन्न पुरास्थलों में छत्तीसगढ़ का सिरपुर नामक पुरास्थल एक प्रमुख स्थान रखता है। यह स्थल प्राचीन काल में बौध्द धर्म के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में विद्यमान था। साथ ही यहां ब्राह्मण और जैन धर्मो का भी समान रूप से विकास दिखायी देता है। इस पुरास्थल के काल निर्धारण में विभिन्न पुरावशेषों के साथ यहां से प्राप्त मुद्राएं महत्वपूर्ण है।

21.25' उत्तरी अक्षांश तथा 82.11' पूर्वी देशांतर में महानदी के दांए तट पर सिरपुर स्थित है। यह पुरास्थल आधुनिक छत्तीसगढ़ राज्य के महासमुंद जिले में स्थित है। इस स्थान के विषय में सबसे पहले जे.डी. बेगलर द्वारा जानकारी दी गई। 1872-73 में जे.डी.बेगलर ने सिरपुर का सर्वेक्षण किया। उनके अनुसार सिरपुर 5 मील के एरिया में फैला हुआ था। इसके पश्चात् कनिंघम ने 1881-82 में सिरपुर का सर्वे किया, उनके अनुसार यह प्राचीन नगर 6 मील में फैला हुआ था। 19वीं शताब्दी में हुए इस सर्वेक्षण से सिरपुर की संस्कृति जो छुपी हुई थी उस पर प्रकाश पड़ा। किन्तु यह सर्वेक्षण केवल स्थापत्य पुरावशेशों पर ही केन्द्रित था।

कनिंघम को सिरपुर में बुध्द मूर्तियों की अत्यधिक प्राप्ति हुई तब उनका मानना था कि सिरपुर में बौध्द धर्म का प्रसार था। सिरपुर के पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त अवषेशों में मुद्राएं प्रमुख है। सर्वप्रथम सिरपुर का उत्खनन 1953-56 में सागर विश्वविद्यालय और मध्यप्रदेश पुरातत्त्व विभाग की ओर से डॉ. एम.जी. दीक्षित के द्वारा करवाया गया। प्राचीन नगर के उत्खनन में उन्हें तीन चरण प्राप्त हुए, जिनमें प्रथम चरण पांचवीं शता. ई. के अंतिम चतुर्थांश के लगभग निश्चित किया गया क्योंकि इस चरण से प्रसन्नमात्र की स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति हुई है।

दूसरा चरण सातवीं शताब्दी के लगभग तथा तीसरा चरण ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग निर्धारित किया गया है। तीसरे चरण से कल्चुरि शासक रत्नदेव के 106 तांबे की मुद्रा प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त सातवीं-आठवीं शताब्दी की एक चीनी मुद्रा की प्राप्ति भी हुई है।

सिरपुर के दूसरे चरण का उत्खनन 1999 से लेकर 2011-12 तक पद्मश्री ए.के.शर्मा जी के निर्देशन में हुआ। जिनमें अन्य पुरावशेशों के साथ सैकड़ों की संख्या में मुद्राओं की प्राप्ति भी हुई है। यहां से प्राप्त मुद्राएं स्थानीय शासकों के साथ-साथ सल्तनत और मुगल काल की भी है।

शरभपुरीय शासकों की मुद्राएं - प्रथम चरण के अंतर्गत सिरपुर के प्राचीन नगर स्थल के उत्खनन में सबसे निचले स्तरों से शरभपुरीय शासक प्रसन्नमात्र की एक स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति हुई है, जो भग्नावस्था में है। इस मुद्रा के प्राप्ति फलस्वरूप ही इस स्तर का काल पांचवीं शता. के अंत और छठवीं शता. का प्रारंभ निर्धारित किया गया है। यह सिक्का स्थानीय उत्पीडांक तकनीक से बना हुआ है। इसका आकार गोल है। यह मुद्रा एक पृष्ठीय है जिसका पुरोभाग एक समानांतर रेखा द्वारा विभाजित है। ऊपर के भाग में गरूड़ का अंकन है जिसके एक ओर शंख और दूसरी ओर चक्र स्थित है तथा नीचे के भाग में पेटीकाशीर्ष लिपि में श्री प्रसन्नमात्र लेख अंकित है।

चीनी मुद्रा - विहार 1-5 क्षेत्र के उत्खनन में डॉ. एम. जी. दीक्षित को एक चीनी मुद्रा की प्राप्ति हुई है। यह मुद्रा चीनी शासक काई युवान (713-714 ई.) का है। इस मुद्रा की आकृति गोल है तथा बीच में एक चौकोर छिद्र बना हुआ है।

कलचुरि शासकों की मुद्राएं - कलचुरि वंश में मुद्रा जारी करने वाले शासक जाजल्लदेव प्रथम, रत्नदेव द्वितीय, पृथ्वीदेव द्वितीय, और प्रतापमल्ल है। इन सभी शासकों की मुद्राएं सिरपुर उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। सिरपुर के नगर स्थल के प्रथम चरण के उत्खनन में रतनपुर के कलचुरि शासक रत्नदेव के 106 ताम्र मुद्रा की प्राप्ति हुई है। इन मुद्राओं की स्थिति अत्यंत खराब है। प्रायः इन मुद्राओं के अग्रभाग पर राजा का नाम "श्री मद्रत्न (भद्र-रत्न) देव" तथा पृष्ठभाग पर कुछ अस्पष्ट आकृति होती है जिसे विद्वानों ने घोड़ा, हाथी या हनुमान माना है।

द्वितीय चरण में हुए उत्खनन से भी कलचुरि शासकों की 230 से अधिक मुद्राएं प्राप्त हुई है। इनमेंउपरोक्त वर्णित चारों शासकों की मुद्राएं है। अधिकांश मुद्राएं खराब स्थिति में होने के कारण सभी का अध्ययन संभव नहीं है। किंतु अस्पष्ट अंकनों से ज्ञात होता है कि इन मुद्राओं पर गजशार्दुल का अंकन है। प्रायः अधिकांश कलचुरि मुद्राओं पर गजशार्दुल का अंकन ही प्राप्त होता है किन्तु कुछ मुद्राओं पर हनुमान, सिंह के साथ कटार एवं ब्राह्मी अक्षर 'म' आदि भी प्राप्त होते है।

इसके पश्चात् मध्यकालीन मुद्राओं का क्रम आता है जिसमें दिल्ली सल्तनत के शासकों तथा मुगलकालीन मुद्राएं आती है। सिरपुर उत्खनन से दिल्ली सल्तनत के सिर्फ खिलजी शासक अलाउद्दीन खिलजी की मुद्रा ही प्राप्त हुई है। अलाउद्दीन खिलजी ने दीनार (स्वर्ण मुद्रा), टंका (रजत मुद्रा), जीतल (रजत-ताम्र मिश्रित मुद्रा) और फाल (ताम्र मुद्रा) चार मूल्य वर्ग की मुद्राएं चलायी। सिरपुर के प्रथम चरण के उत्खनन से अलाउद्दीन खिलजी की दो प्रकार की मुद्राएं प्रकाश में आई है।

प्रथम प्रकार की मुद्रा जिसकी संख्या दो है, जीतल (रजत-ताम्र मिश्रित मुद्रा) श्रेणी की है। यह गोलाकार मुद्रा द्विभाशी है। इसका वज़न 2.84 ग्राम है। मुद्रा के पुरोभाग पर नक्श शैली में अरबी मुद्रालेख, "अस-सुल्तान-उल-आजम अलाउद-दुनिया-वद-दिन" अंकित है। पृष्ठभाग पर पुरोभाग के मुद्रालेख का नागरी संस्करण "श्री सुल्तान अलाउद्दीन" और नागरी में तिथि

अकबर की मुद्राएं

अग्रभाग पृष्ठभाग

708 हिजरी संवत् (1308-09 ई.) मुद्रा के चारो ओर अंकित है तथा बीच में दोहरे गोले के अंदर सुल्तान का प्रथम नाम "मुहम्मदशाह" अरबी में अंकित है।

द्वितीय चरण (2006-07) के उत्खनन में अलाउद्दीन खिलजी की रजत मुद्रा (टंका) प्रकाश में आई है। इस मुद्रा का आकार गोल है। इस मुद्रा पर दोनों ओर गोलाकार आकृति के अंदर वर्गाकार आकृति बनी हुई है और उसी में अरबी में लेख है। जिससे यह ज्ञात होता है कि यह मुद्रा हिजरी संवत् 713 (1313-14 ई.) में हजरत-ए-देहली (टकसाल) दिल्ली में ढलवाई गई।

तत्पश्चात् सिरपुर से मुगल शासक अकबर और औरंगजेब (1658-1707 ई.) की कुछ मुद्राएं प्रकाश में आई है। अकबर की मुद्रा को अभी तक पढ़ा नहीं गया है। अतः इसका संक्षिप्त वर्णन प्राप्त नहीं होता। यहां से प्राप्त औरंगजेब की मुद्रा रजत धातु की है और इसका आकार गोल है और इसके बीच में दो छिद्र बने हुए हैं। इस मुद्रा में लेख नस्तालिक शैली में है। मुद्रा के पुरोभाग पर शासक का नाम और हिजरी संवत् का उल्लेख तीन लाइन में है। अर्थात् यह मुद्रा औरंगजेब के 31वें राज्यवर्ष में औरंगाबाद टकसाल से जारी की गई।

सिरपुर उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं के आधार पर इसके सांस्कृतिक इतिहास का प्रारंभ लगभग 5वीं-6वीं शता. ई. माना जाता है। चूंकि मुद्रा के अतिरिक्त अन्य पुरातात्विक स्रोतों से ज्ञात होता है कि यह पुरास्थल प्राचीन काल में शरभपुरीय शासकों का महत्वपूर्ण केन्द्र और पाण्डुवंशीय शासकों की राजधानी रह चुका है अर्थात् इस पुरास्थल का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। शरभपुरीय शासकों के बाद इस क्षेत्र पर पाण्डुवंशीयों का राज्य रहा और यह स्थल उनकी राजधानी के रूप में विद्यमान थी तथापि पाण्डुवंशीयों की किसी भी मुद्रा की प्राप्ति इस पुरास्थल के उत्खनन से नहीं हुई है। संभवतः वे शरभपुरीय शासकों की मुद्राओं का ही प्रयोग कर रहे थे।

आठवीं शता. ई. की चीनी मुद्रा की प्राप्ति इस पुरास्थल का संबंध चीन से जोड़ने की ओर संकेत करती है किन्तु मात्र एक मुद्रा की प्राप्ति होने पर इस क्षेत्र का चीन से व्यापार संभव प्रतीत नहीं होता। संभवतः किसी यात्री के माध्यम से यह मुद्रा यहां पहुंची हो और इसका संबंध बौध्द धर्म से हो सकता है क्योंकि तत्कालीन समय में सिरपुर बौध्द धर्म के प्रमुख केन्द्र के रूप में विद्यमान था।

रतनपुर के कलचुरि शासकों की मुद्राएं इस क्षेत्र से प्राप्त हुई है जिन्होंने ग्यारहवीं शता. ई. से लगभग 14-15वीं शता. ई. तक शासन किया। यह क्षेत्र कलचुरियों की राजधानी तो नहीं किन्तु प्रमुख केन्द्र अवश्य रहा होगा क्योंकि यहां से सबसे अधिक मुद्राएं कलचुरियों की ही प्रकाश में आई है। संभवतः यह कलचुरियों के व्यापारिक केन्द्र के रूप में विद्यमान रहा हो।

इसके पश्चात् क्रमशः सल्तनतकालीन और मुगलकालीन मुद्राएं इस क्षेत्र से प्राप्त हुई जिससे ज्ञात होता है कि मध्यकाल में भी यह क्षेत्र महत्वपूर्ण स्थल के रूप में विद्यमान था किन्तु मुस्लिम शासक अलाउद्दीन खिलजी (चौदहवीं शता.) और फिर औरंगजेब (लगभग 17वीं-18वीं शता.ई.) की कुछ मुद्राओं के प्राप्त होने से उनका प्रत्यक्ष प्रभाव तो इस क्षेत्र में परिलक्षित नहीं होता किन्तु यह उनके प्रभाव क्षेत्र में अवश्य रहा होगा। संभवतः व्यापार अथवा यात्रियों के माध्यम से ये मुद्राएं यहां पहुंची होंगी। इस प्रकार इन मुद्राओं के प्रकाश में आने से इस पुरास्थल के पांचवीं-छठवीं शता. ई. से 18वीं शता. ई. तक के सांस्कृतिक अनुक्रम की एक रूपरेखा तैयार की जा सकती है। जिसमें सिरपुर एक महत्वपूर्ण पुरास्थल के रूप में विद्यमान था।

डॉ. नितेश कुमार मिश्र
डॉ. शबीना बेगम

रत्नदेव, पृथ्वीदेव और जाजल्लदेव की मुद्राएं

अग्रभाग पृष्ठभाग

मेरी सिरपुर यात्रा

पर्यटन अर्थात भ्रमण करना, घुमक्कड़ी का अर्थ भी घूमना ही है, मगर इसमें फक्कड़पन, मनमौजीपन का भाव आता है कि न कोई पूर्व योजना और न तैयारी, बस मन हुआ और निकल गए स्वयं अपने को लेकर। वैसे मैं घुमक्कड़ी ही करती रही हूँ। स्थान, समय,दिन की कोई योजना नहीं बस मन हुआ या साथ मिला और पहुंच गए कोई नदी, बांध, उद्यान, प्राचीन मन्दिर, ऐतिहासिक स्थल। ऐसे ही एक दिन सिरपुर भ्रमण का मन बनाया और निकल पड़ी निजी वाहन से। सिरपुर के विशय में पुस्तकों में पढ़ती रही हूं। परन्तु प्रत्यक्ष देखने पर जो आनंद की अनुभूति होती है वह विलक्षण होती है। भले ही किसी स्थान के बारे में हमने कितना भी पढ़ या सुना हो, फोटो, फिल्में, डाक्यूमेंट्री देखी हों परन्तु यदि इतिहास को महसूस करना हो तो उस स्थान में जाकर अपनी आंखों से देखना महत्वपूर्ण होता है। शीतकालीन छुट्टियां थीं इसलिए सिरपुर जाने में मुझे कठिनाई नहीं हुई क्योंकि रायपुर से लगभग 80km की दूर महासमुंद मार्ग पर कुहरी मोड़ से 17km सिरपुर स्थित है।

श्रीपुर नाम से ही लगता है कि धन-वैभव से संपन्न श्री अर्थात लक्ष्मी की नगरी रहा होगा। जो कालांतर में सिरपुर हो गया। महानदी जिसे चित्रोत्पला गंगा भी कहा जाता है। इसके किनारे पर स्थित सिरपुर ऐतिहासिक, पुरातात्विक महत्व का स्थान है। रायपुर से सिरपुर पहुंचकर सीधे रेस्टहाउस पहुँची। जलपान के बाद समीप ही स्थित सुरंग टीला देखने गए, जो दूर से पिरामिड के समान भव्य दिख रहा था। पत्थरों से बना यह मंदिर ऊंचे अधिष्ठान अर्थात आधार पर बना है। जो पश्चिम की ओर मुख वाला है और पंचायतन शैली में बना है। मन्दिर प्रांगण में 32 स्तम्भों वाला महामंडप है। इसके बाद सीढ़ियां हैं जो दूर से नाव के समान दिखाई देती हैं। इन सीढियों का दबा होना और बदला स्वरूप भूकंप के प्रभाव को दर्शाता है। यहाँ 4 शिवलिंग और 1 गणेश मंदिर है। मन्दिर के स्तम्भों पर सुंदर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जो शिल्पकारों की दक्षता का प्रमाण देती हैं। यहां के स्तंभों में ध्रुवबल, कमलोदित्य, द्रोणा दित्य एवं विट्ठल नामक कारीगरों के नाम उकेरे गए हैं जैसे उन्होंने अपने हस्ताक्षर कर रखे हों। यहां वास्तु का भी विशेश ध्यान रखते हुए ही निर्माण किया जाता था। जैसे मन्दिर के दक्षिण दिशा में पुजारी का निवास उसके दक्षिण में कुआं, तालाब एवं आग्नेय कोण में रसोई घर का होना इस बात का प्रमाण है। यहाँ पर एक ओर विष्णु और दूसरी ओर शिवालय से वैष्णव और शैव दोनो सम्प्रदाय को दर्शाता है। भगवान शिव की प्रतिमा की नही अधिकांश शिवलिंग ही दिखाई देते हैं।

सुरंग टीला से दाहिने ओर महानदी के किनारे एक शिव मन्दिर में कई शिवलिंग स्थापित हैं तथा महानदी तक सीढ़ियां बनी हुई हैं। यह एक आश्रम है जो चारो तरफ पेड़-पौधों से घिरा वनक्षेत्र है। यहां वनौशधियाँ पाई जाती हैं जिनका आयुर्वेदिक चिकित्सा में उपयोग होता है।

इसके बाद आनंद प्रभ कुटी विहार पहुंचे इसका निर्माण ईंटो से हुआ है। यहां ईंटो का बहुतायत उपयोग को देखने से यह पता चलता है कि इस संस्कृति को महानदी की मिट्टी से ईंटों बनाने की कला का ज्ञान था। यहां के विहार से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि यहां आनंद प्रभ नामक बौद्ध धर्मावलम्बी थे।यहां के विहारों में बौद्ध भिक्षुओं के निवास एवं अध्ययन-अध्यापन केंद्र था। विहार के सामने तोरणद्वार था। यह विहार दो मंजिल का था। यहाँ अनेक प्रतिमाएं स्थापित हैं जो इसकी सुंदरता एवं ऐतिहासिक महत्व को बढ़ाती हैं।

यहां बौद्ध धर्म के प्रभाव को मैंने पढ़ा था जिसे देखने और अनुभव करने के लिए यहां स्थित तीवर देव महाविहार जाना था। परंतु इसके पहले हम महानदी के तट पर स्थित गन्धर्वेश्वर मन्दिर पहुंचे। प्रवेश द्वार के दाएं तरफ बरामदा है। मन्दिर में प्रवेश करते ही बाएं तरफ उर्ध्वरेतस लकुलीश की प्रतिमा है। मन्दिर के गर्भगृह में शिवलिंग है। यहां के स्तम्भों में कारीगरी की गई है दो स्तम्भों के अभिलेख से पता चलता है कि यह महाशिव गुप्त बालार्जुन के काल के हैं जिसमे राजा ने प्रणव हट्ट के मालियों को प्रतिदिन मानवाकार पुष्पहार भगवान को अर्पित करने को आदेशित किया है। यहां मन्दिर परिसर में बहुत सी मूर्तियां रखी हुई हैं। मन्दिर के मुख्य द्वार पर नन्दी पर बैठे शिव-पार्वती विराजमान हैं।

गन्धर्वेश्वर मन्दिर के समीप जैन विहार और बड़ा शिवमन्दिर भी उत्खनन से प्राप्त हुआ है। इस के पूर्व तरफ बाजार क्षेत्र है। उत्खनन में विशाल व्यापार क्षेत्र का प्राप्त होना सुव्यवस्थित ढंग से नगर योजना व समृद्धि की गौरव गाथा गाते प्रतीत हो रहे थे। महानदी के किनारे विशालबाजार क्षेत्र प्राप्त हुआ है। यहां पर दुकान और अनाज भंडार बने हैं। बाजार क्षेत्र में पानी की व्यवस्था के लिए चूना पत्थर से बने कुएं आज भी सुरक्षित दिखाई देते हैं। वहां के निवासयों की जरूरत के सारे सामान मिलते रहे होंगे। उत्खनन में सिक्के, लोहे के औजार, मिट्टी के मटके, खिलौने, आभूशण, ताम्रपत्र, मूर्तियां, ताले, श्रृंगार के सामान इत्यादि प्राप्त हुए हैं। जिनसे उनकी सभ्यता की अद्भुत छबि को महसूस किया जा सकता है कि कितनी उन्नत तकनीक रही होगी यहाँ खुदाई में नाव के खिलौनों को देख कर लगता है कि महानदी के तट पर स्थित श्रीपुर में बाजार में वस्तु विनिमय तो होता ही था साथ में नाव से आवागमन भी किया जाता रहा होगा। यहां से धातु की प्रतिमाएं भी अपनी उन्नत धातु शिल्पकला का मानों स्वयं ही बखान करती प्रतीत होती हैं।

अब मुझे प्रसिद्ध लक्ष्मण मन्दिर देखना था। जिसे देखने देश-विदेश से पर्यटक आते हैं। यहां टिकिट की व्यवस्था है जिसका निर्धारित शुल्क है। यहां पीली पट्टी जो ब्लाइंड लोगों के लिए बनी है। यहां ब्रेलिपि में लिखा हुआ दस्तावेज भी है। लक्ष्मण मन्दिर ईंटों से बना भव्य मंदिर है और 7 फिट ऊंचे चूना पत्थर से निर्मित अधिष्ठान पर स्थापित है। इसका निर्माण मगध के राजा सूर्य बर्मन की पुत्री और श्रीपुर के नरेश महाशिवगुप्त बालार्जुन (जिनका उल्लेख मैं पहले भी कर चुकी हूँ) इनकी माता, हर्ष गुप्त की पत्नी महारानी वासटा ने कराया था। इसके मुख्य द्वार पर शेशनाग की शैय्या में विष्णु उत्कीर्ण हैं। द्वार पर ही विष्णु के अवतार, कृष्ण लीला, द्वारपालों, मिथुन दृश्य का अंकन है। द्वार के दोनों ओर मोर बने हुए हैं। जो मौर्यवंश

का प्रतीक चिन्ह था। जो इनकी उपस्थिति को भी दर्शाता है। मन्दिर के गर्भगृह में शेशनाग पर बैठी प्रतिमा है। शेशनाग ही लक्ष्मण के रूप में अवतार माना गया है इसलिए यह लक्ष्मण मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। यहां बाहर की दिवारों पर कूटद्वार, वातायन आकृति, गवाक्ष, भारवाहक, गज, कीर्तिमुख और आमलक हैं। ईंटों से बना यह पुरातात्विक महत्व का मंदिर है। जो 1953 में टीले उत्खनन में प्राप्त हुआ था। श्रीपुर नगर का उल्लेख व्हेनसांग ने अपनी यात्रा वृतांत में किया है। ईंटों पर विभिन्न कलाकृतियां उकेरी गईं हैं । ईंटों पर कलाकृतियां बनाना कितना कठिन है। सच में लक्ष्मण मन्दिर के निर्माण में वास्तुकारों और शिल्पकारों की अद्भुत कला प्रतिभा देखते बनती है। वर्तमान में इतना सुंदर है तो उस समय इसका सौंदर्य अनुपम रहा होगा।

मन्दिर के पीछे संग्रहालय है। जहां उत्खनन से मिली मूर्तियां रखी हुई हैं। शिवलिंग, बुद्ध, विष्णु, महिषासुर मर्दनी अन्य बहुत सारी मूर्तियां रखी हुई हैं। यहां पहाड़ खोदकर गुफाओं का प्रतिरूप है जैसे सरगुजा के रामगढ़ में सीताबेंगरा गुफा बनी है। सिरपुर में प्राचीन शिल्पियों ने भवन निर्माण, मन्दिरनिर्माण, नगरविन्यास, मूर्तिशिल्प जैसे अन्य क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण कार्य किया एवं सामग्री-संगठन में थोड़ी-सी लापरवाही नहीं की इसीलिए हमें हजारों साल पुरानी संरचनाएं आज भी देखने मिल रहीं हैं। लक्ष्मण मन्दिर के सामने ही राम मंदिर स्थित है। यहां कोई मूर्ति नहीं है। ईंटों से बना अधूरा मन्दिर है। विष्णु मंदिर को लक्ष्मण मन्दिर कहा जाता है इसलिए इसे राम मंदिर कहे जाने की लोक मान्यता है।

यहां से निकल कर कसडोल जाने वाले मार्ग पर सिरपुर चौराहे से एक किलोमीटर दूरी पर स्थित तीवरदेव विहार पहुँची। यहाँ बौद्ध धर्म का पूर्ण प्रभाव दिखाई दे रहा था। बौद्ध विहार में सुंदर प्रवेश द्वार है इसकी शिल्पकारी भी अद्भुत है। यहां जातक कथाओं को उकेरा गया है। बन्दर की कथा, सांप का मेंढक पकड़ना, चाक पर बर्तन बनाते हुए कुम्हार, फूल पर बैठी मधुमक्खी, युगल प्रतिमा अंकित की गईं हैं। यहां प्रणयरत युगल मूर्तियां दिखाई देती हैं। प्रवेश द्वार पर 16 स्तम्भ है। गर्भगृह में बुद्ध की प्रतिमा है जो धरती को स्पर्श करती मुद्रा में है। अन्य प्रतिमाएं भी हैं।

भूमिगत नालियों के अवशेशों से वहां की जल निकासी की व्यवस्था पर प्रकाश डालती है। यहाँ पत्थर के स्तम्भ हैं। बौद्ध भिक्षुणियों के भी विहार इस परिसर में स्थित हैं। जिसे हर्ष विहार नाम दिया गया है। तीवरदेव महाविहार महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है। यहां चार विहार और एक शिव मंदिर है। जो दक्षिण कोसल का सबसे बड़ा उत्खनित विहार है और महाशिवगुप्त तीवरदेव के शासनकाल में 6वीं शताब्दी के मध्य निर्मित माना जाता है। ऐसा उपलब्ध अभिलेखों से ज्ञात होता है। सिरपुर के इन स्थलों को देखकर अतीत में जाकर घूमने और अनुभव करने का अवसर मिला। यहाँ के परंपरागत शिल्पकारों की प्रतिभा को देखने से इस बात का अनुमान लगया जा सकता है कि इन्हें सम्मान जनक स्थान प्राप्त था एवं राजाश्रय प्राप्त था। वैसे किसी भी राजा के कार्यकाल की स्थिति को उसके काल में हुए निर्माण कार्य,शिल्पकला, वास्तु कला एवं राजा द्वारा जारी गए सिक्कों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों और उत्खनित वस्तुओं से लगाया जा सकता है।

इतने उन्नत वैभवशाली नगर और सुंदर संस्कृति का पतन कैसे हुआ होगा? यह विचार मन-मस्तिष्क में घूम रहा था। सम्भवतः बाढ़ और भूकंप तो कारण रहे होंगे ! कोई भी सभ्यता एकाएक समाप्त नहीं हो सकती। अनेक कारण हो सकतेहैं। जैसे आक्रमण होना,निवासियों का पलायन, व्यापारियों का व्यापार-वृद्धि एवं लाभार्जन हेतु अन्य राज्य में स्थापित होना आदि। परन्तु कटु सत्य तो यही है समय परिवर्तनशील है। सृष्टि में निर्माण, विकास और विनाश का क्रम भी चलता रहता है। वैभवशाली श्रीपुर खंडहर में बदल गया था, समय के साथ पुनः खंडहरों के अवशेशों से उत्पन्न पुनः एक गांव सिरपुर के नाम से प्रकाश मे आया। सांझ ढल रही थी, सूर्य अस्ताचल को चल दिये थे और इन्ही बातों को सोचती हुई मैं रायपुर की ओर निकल पड़ी।

रेखा पाण्डेय (लिपि)
व्याख्याता, अम्बिकापुर, सरगुजा

प्राचीन सिरपुर का कला वैभव

प्राचीन स्थलों की सैर मनुष्य को अपनी जड़ों तक खींच कर ले जाती है, वह आभासी रुप से खंडहरों के माध्यम से अपने अतीत वैभव का दर्शन करता है तथा उस काल खंड को महसूस करता है। गर्मी के मौसम में बच्चों की परीक्षाओं के उपरांत सभी का भ्रमण योग बन जाता है। हमने सिरपुर का बहुत नाम सुना था इसलिए सिरपुर भ्रमण की योजना बनाई।

सिरपुर हमारे यहाँ से लगभग 400 किलोमीटर है, नागपुर से रायपुर होते हुए सिरपुर पहुंच सकते हैं। हमने शिवनाथ इंटर सिटी की टिकिट ली और रात को 12 बजे ट्रेन में सवार होकर सुबह साढे पाँच बजे रायपुर पहुंच गए। यहाँ हमारे लिए किराए की टैक्सी की व्यवस्था थी। सुबह की चाय पीकर सिरपुर के लिए प्रस्थान कर गए।

रायपुर शहर की सड़कों एवं उड़ान पुलों को देखकर लगा कि हम युरोप के किसी शहर में है। रास्ते के खेतों की मेड़ पर पलास के फ़ूल खिले हुए थे, लग रहा था कि वृक्षों पर आग लगी है और वे दहक रहे हैं। कोडार डैम से थोड़ा आगे चलने पर बांई ओर सिरपुर के जाने का रास्ता है। यह सड़क बहुत ही अच्छी हालत में है। थोड़ी दूर चलने के बाद सघन जंगल प्रारंभ हो जाता है। जहां बसंत के मौसम में खिलने वाले फ़ूलों की महक मन को आनंदित कर रही थी और छोटी चिड़ियों की सामुहिक चहचहाहट वातावरण में सुमधुरता घोल रही थी।

सिरपुर पहुंच कर हमने व्हेनसांग रिसोर्ट में डेरा जमाया और स्नानोपरांत प्राचिन स्मारकों की सैर

पर चल पड़े। हमारी मुलाकात सबसे पहले सिरपुर के उत्खननकर्ता अरुण शर्मा जी से हुई, उन जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व से मिलकर सिरपुर के बारे में काफी जानकारियां प्राप्त हुई। उसके बाद उन्होंने हमें प्रभात सिंह जी से मिलवाया, जो उनके असिस्टेंट हैं, उन्होंने हमे उत्खनन से प्राप्त मूर्तियाँ, आभूशण, सिक्के, हथियार, ताले सहित अन्य बहुत सी वस्तुओं के साथ मुख्य रूप से आकर्षित करने वाले एलियन की मुखौटेनुमा पत्थर की मूर्तियाँ दिखाई, जिसे देखकर उस समय के तकनीकी विकास की कल्पना की जा

सकती है।

उनके साथ हम सबसे पहले सुरंग टीला पहुंचे/ सुरंग टीला एक विशाल पिरामिड की तरह दिखाई दे रहा था जो शिवालयों का समूह है। 43 सीढ़ियों की चढ़ाई के बाद ऊपर पहुंचे जहाँ 4 शिवलिंग और एक गणेश मंदिर है, स्तंभों पर उकेरी सुन्दर मूर्तियाँ देखते ही बनती हैं। शिल्पकार ने बड़ी खूबसूरती से उकेरा है। उत्खनन में प्राप्त यह अद्भुत स्मारक है।

सुरंग टीला से आगे सिरपुर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के समीप राजमहल पहुंचे राजमहल की दीवारें पक्की ईंटों से बनी दिखाई दी, उसमे अनेक कक्ष बने थे। महानदी के तट पर स्थित होने के कारण यह स्थान बहुत ही मनोरम दिखाई दे रहा था। इसके पश्चात नागार्जुन आचार्य निवास, स्वस्तिक विहार देखा, यहाँ भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा स्थापित है।

थोडा आगे चलने पर आनंद प्रभ कुटी विहार दिखाई दिया जिसका तोरण द्वार बहुत सुन्दर- सुन्दर प्रतिमाओं से सुशोभित है। इंतनी बारीकी से कि गई कारीगरी देखकर पता चलता है कि उस समय की शिल्पकला कितनी विकसित होगी। इसके बाद हम लक्ष्मण मंदिर पहुंचे विशाल सुन्दर मंदिर जो ईंटों से बना है मंदिर के द्वार पर सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ और अन्दर शेशनाग विराजित दिखाई दिये। ईंटों पर कि गई बारीक कारीगरी देखकर आश्चर्य होता है आखिर इतनी सूक्ष्मता से इसपर कैसे इतना सुन्दर काम किया गया होगा, क्योंकि पत्थर कि तरह आसान नहीं होगा इस भुरभुरी ईंट पर शिल्पकारी करना. सचमुच अद्भुत है उन शिल्पकारों का कला कौशल।

इतना विशाल मंदिर और उसके चारों ओर का मनोहारी दृश्य, सुन्दर वृक्ष, चहचहाते पक्षी जैसे वहां बारबार आने का न्योता देते से प्रतीत होते हैं। लक्ष्मण मंदिर से तीवर देव महाविहार पहुंचने पर सुन्दर अलंकारों से सजे हुए प्रवेश द्वार वाला विशाल विहार दिखाई देता है। इस प्रवेश द्वार पर ध्यान मुद्रा में बुद्ध, सिंह, मोर, चक्र, मगर और बन्दर की पंचतंत्र की कथा में बिल से निकल कर सांप का मेंढक को पकड़ना, पुष्प पर बैठी हुई मधुमक्खी, चाक पर बर्तन बनाता हुआ कुम्हार और भी अन्य कई पशु एवं मानव भंगिमाएं दिखाई देती हैं। इतने वर्षों के बाद भी आज भी इनकी सुन्दरता और आकर्षण बरक़रार है।

इसके बाद हम पहुंचे महानदी के किनारे स्थित बाज़ार अर्थात व्यापर विहार में। वर्तमान की भांति सुंदर नगर नियोजन यहां देखने को मिलता है। कतार से दुकाने और हर दुकान में अनाज रखने की भूमिगत कोठियां बनी थी जिन्हें देखकर हम अंदाजा लगा सकते हैं कि उस समय वस्तु के बदले अनाज का लेन-देन चलता होगा।

बीच में एक मुख्य मार्ग और बाकि छोटे-छोटे रास्ते उस समय की योजनाबद्धता और व्यापार कुशलता को दर्शाती हैं। हर दुकान में ओखलीनुमा गड्ढा दिखाई दिया, जिसके बारे में जानने कि उत्सुकता अभी भी मन में है। महानदी के तट पर अन्य मंदिरों की सामग्री को जोड़ कर बनाए गए गंधर्वेश्वर मंदिर के दर्शनार्थ पहुंचने पर हमें गर्भ गृह के मंडप में स्तंभ लेख दिखाई दिया। जिस पर राजाज्ञा उत्कीर्ण की हुई थी। लिखा था कि प्रणव हट्ट के मालाकारों को प्रतिदिन कर कर रुप में एक मानवाकार पुष्प माला भगवान को अर्पित करनी है। यहां अन्य शिलालेख भी पाए जाते हैं।

यहीं पर जैन विहार भी है, जहां से पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा उत्खनन में प्राप्त हुई है। दक्षिण कोसल की प्राचीनतम राजधानी श्रीपुर को माना जाता है। सर्वप्रथम शरभपुरियों ने इसे अपनी राजधानी बनाया इसके पश्चात यह नगर पाण्डुवंशियों की राजधानी बना। जिनमें महाशिवगुप्त जैसे दीर्घकाल तक शासन करने वाले प्रतापी नृप हुए। इस नगर के खंडहरों को देख कर लगता है कि यह कभी वैभवशाली एवं सत्ता का मुख्य क्रेंद रहा होगा। रायपुर से सिरपुर की दूरी 82 किलोमीटर है और किसी भी मौसम में यहां की सैर की जा सकती है। सिरपुर में देखने लायक तो और भी बहुत कुछ है। लेकिन समय कम होने के कारण हमने जल्दी ही वापसी करनी पड़ी।

संध्या शर्मा
फ़ीचर एडिटर न्यूज एक्सप्रेस, नागपुर, महाराष्ट्र

बैगा जनजाति की अनूठी परंपरा

जनजातीय कबीलों के अपने सांस्कृतिक रीति रिवाज होते हैं, जो उनके कबीले में पीढ़ी दर पीढ़ी चले आते हैं तथा ये कबीले परम्परागत रुप से अपनी संस्कृति से बंधे होते हैं। दक्षिण कोसल में बहुत सारी जनजातियाँ निवास करती हैं, उनमें से एक बैगा जनजाति है। बैगा जनजाति का विस्तार छत्तीसगढ़ के कबीरधाम जिले से लेकर मध्यप्रदेश के मंडला, बालाघाट एवं डिंडौरी जिले तक फ़ैला हुआ है।

वैसे तो सभी जातियों-जनजातियों की अपनी मृतक संस्कार परम्पराएँ पर बैगाओं की मृतक संस्कार परम्परा में एक विशेष कार्य होता है जिसका जिक्र किया जाना आवश्यक है। यदि बैगाओं में परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो वे पुराने मकान को तोड़कर, स्थान परिवर्तन कर नये स्थान पर नया मकान बनाते हैं। ज्ञात हो कि बैगा परिवार एकल रहना अधिक पसंद करता है, ये दूर दूर पर बसते हैं।

इस परम्परा के पीछे रहस्य का उद्घाटन करते हुए इतवारी मछिया बैगा बताते हैं कि जिस घर के सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो वह भूत बनकर उस घर के जीवित सदस्यों को तंग करता है, परेशान करता है। इसके साथ ही जिस स्थान पर उस सदस्य की मृत्यु होती है, वहां रहने वालों को उसकी याद आती है।

इतवारी मछिया कहते हैं जिस घर में सदस्य की मृत्यु होती है, वहाँ पड़ोसी लोग कुछ दिन उसके साथ रहते हैं, जब तक अन्य मृतक संस्कार संपन्न न हों जाएं। इसलिए मृतक स्थल को वे मुर्दावली भी कहते हैं। मृतक संस्कार के पश्चात ये अपना घर छोड़ देते हैं।

फ़िर घर बनाने के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश की जाती है, मनमाफ़िक स्थान मिलने पर पुराने घर को तोड़कर नये घर का निर्माण किया जात है। इसी तरह की नया घर बनाने की कोरवा जनजातीय के लोगों की भी परम्परा है।

नया घर बनाने के लिए स्थान चयन पुराने घर से एक-दो किलोमीटर की दूरी पर किया जाता है। अगर स्थान उपलब्ध नहीं है पुराने घर के पास ही नया घर बनाया जाता

है। नया घर बनाने से पहले स्थान पर शुभ-अशुभ का विचार किया जाता है। बैगा शुद्ध सिंह बताते हैं कि नये स्थान पर परिवार का मुखिया साबूत चावल से भरा एक बड़ा दोना, महुआ की शराब लेकर मंत्र उच्चारण करता है। उस स्थान पर दारु का छींटा दिया जाता है तथा निश्चित स्थान पर चावल का दोना रख दिया जाता है।

तीन दिनों के पश्चात उस स्थान पर पुनः जाते हैं और दोने में रखे हुए चावल का परीक्षण किया जाता है, अगर दोने के चावल टूट जाते हैं तो उस स्थान पर घर नहीं बनाया जाता तथा पुनः किसी अन्य स्थान पर परीक्षण किया जाता है। चावल के दाने का टूटना अनिष्ट की आशंका होती है इसलिए जिस स्थान परीक्षण पर चावल के दाने खंडित नहीं होते वहां घर का निर्माण किया जाता है।

मृतक के अंतिम संस्कार के समय उसकी कोई भी वस्तु स्मृति के रुप में नहीं रखी, उसकी फ़ोटो, कपड़ा या अन्य वस्तुएं दाह संस्कार के समय मृत देह के साथ ही जला दी जाती हैं क्योंकि मृतक की वस्तुएं देखने पर उसकी याद न आए।

घर की स्त्रियों की शुद्धि के लिए उन पर एक लोटा गर्म जल डाला जाता है, जिससे मृतक परिवार की स्त्रियाँ शुद्ध हो सकें। वर्तमान आधुनिक एवं भौतिक संक्रमण के दौर में बैगा वनवासी अपनी परम्परा अक्षुण्ण रखे हुए हैं।

गोपी सोनी
कुई - कुकदूर, जिला कवर्धा

दक्षिण कोसल का पारम्परिक भित्ति चित्र सुलो कुठी

मानव मन की अभिव्यक्ति का एक प्राचीन माध्यम भित्ति चित्र हैं, जो आदि मानव की गुफा कंदराओं से लेकर वर्तमान में गांव की भित्तियों में पाये जाते हैं। इन भित्ति चित्रों में तत्कालीन मानव की दैनिक चर्या एवं सामाजिक अवस्था का चित्रण दिखाई देता है। वर्तमान में भित्ति में देवी-देवताओं को स्थान दिया जाता है। ऐसी ही एक भित्ति चित्र कला दक्षिण कोसल की सीमान्तर्गत पश्चिम ओड़िशा में दिखाई देती है।

पश्चिम ओड़िशा की विलुप्त हो रही दीवार चित्रकला 'सुलो कुठी' याने कि ' सोलह कोठियों ' को बचाने में लगे हैं लोक चित्रकार रमेश गुरला । वह बरगढ़ जिले के पदमपुर कस्बे में रहते हैं । उन्होंने अपने साधारण से मकान की परछी की दीवार पर भी यह चित्रांकन किया है। संक्षिप्त बातचीत में उनकी कला प्रतिभा और इस लोक शिल्प के अनेक पहलुओं की जानकारी मिली ।

उन्होंने बताया – अश्विन शुक्ल अष्टमी के दिन ओड़िशा की बहनें सुबह तालाब में स्नान करने के बाद निर्जला उपवास रखकर भाइयों की मंगलकामना करते हुए सुलो कुठी में अंकित सोलह देवी – देवताओं की पूजा करती हैं । गाँव के बीचों – बीच किसी भी एक घर की बाहरी दीवार पर लोक चित्रकार सुलो कुठी का अंकन करते हैं ।

अंकन लिए पहले ताजे दातौन के एक सिरे को कुचलकर ब्रश बनाया जाता था और चावल के आटे से चित्रांकन करते थे । आजकल इसके केलिए वार्निश और रेडीमेड ब्रश का इस्तेमाल किया जाता है। बहरहाल दीवार पर सोलह वर्गाकार कोठियों का रेखांकन कर उनमें गणेश , नारद , सरस्वती , दुर्गा ,कार्तिक , राम , लक्ष्मी , हनुमान ,ब्रम्हा आदि के रेखा चित्र बनाए जाते हैं । एक कोठी में रावण का भी चित्र होता है ।

रमेश जी ने बताया कि सुलो कुठी बनाने वाले चित्रकार को भी उस दिन निर्जला उपवास रखना होता है । बहनें उस दिन देवी -देवताओं की स्तुति के साथ अपने भाइयों की मंगलकामना करती हैं। इस विशेष अवसर पर बहनें 'सुलो कुठी' के सामने डाल खाई नृत्य भी करती हैं । चित्रकार को प्रसाद और कुछ पारितोषिक देकर बिदा किया जाता है ।

रमेश गुरला इस विलुप्तप्राय भित्ति चित्रकला के गिने-चुने शिल्पकारों में से हैं । उन्होंने पश्चिम ओड़िशा की लोक संस्कृति को बचाने के लिए आंचलिक कलाकारों को लेकर पदमपुर संगीत समिति का भी गठन किया है । ओड़िशा संगीत नाटक अकादमी द्वारा वर्ष 2014 में राऊरकेला में रंगोबति उत्सव का आयोजन किया गया था।

वहाँ रमेश जी ने अपनी टीम के साथ सुलो कुठी भित्ति चित्रकला को भी समूह नृत्य के जरिए प्रदर्शित किया । तीन बुजुर्ग महिलाओं और तीन युवतियों के डाल खाई नृत्य में सुलो कुठी का प्रदर्शन करके वो जनता को यह सन्देश देना चाहते थे कि पुरानी पीढ़ी इस लोक शिल्प को जीवित रखना चाहती है और अपनी नयी पीढ़ी से कहना चाहती हैं की वह इस कला परम्परा को कायम रखे।

रमेश जी अपनी टीम के साथ 28 नवम्बर 2017 को देवगढ़ में ओड़िशा के राज्य स्तरीय युवा उत्सव में अपनी सांस्कृतिक प्रस्तुति दी । बरगढ़ में आयोजित जिला स्तरीय युवा उत्सव में राज्य स्तरीय उत्सव के लिए उनकी टीम का चयन हुआ था ।

वह इसके पहले दिसम्बर 2016 में रोहतक (हरियाणा) में आयोजित राष्ट्रीय युवा उत्सव में भी अपनी संगीत समिति के साथ शामिल हो चुके हैं। रमेश जी अनुसूचित जाति से हैं ,जबकि उनकी टीम के अधिकांश कलाकार आदिवासी हैं । वह विभिन्न आयोजनों में उन्हें लेकर करम सैनी (कर्मा) नृत्य का भी प्रदर्शन करते हैं।

स्वराज करुण
वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्यकार, रायपुर

दमऊ दहरा
ऋषभ तीर्थ

मैकल पहाड़ की श्रृंखला छत्तीसगढ़ को प्रकृति की देन है जो पूर्व में उड़ीसा तक और उत्तर पश्चिम में अमरकंटक तक फैलकर अनुपम सौंदर्य प्रदान करती है। इसकी हरियाली मन को लुभाने वाली होती है। वैज्ञानिकों ने तो इसके गर्भ में बाक्साइड, कोयला, चूना और हीरा के भंडार को पा लिया है। इसी कारण यह क्षेत्र कदाचित् औद्योगिक नक्शे में आ गया है। विश्व प्रसिद्ध विद्युत नगरी कोरबा, बाल्को और भिलाई छत्तीसगढ़ के पमुख औद्योगिक नगर हैं। यही नहीं कोरबा और चिरमिरी में कोयला के बहुत बड़े खदान हैं। इसके अलावा अनेक इस्पात सयंत्र, सीमेंट फैक्टरियां यहां के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रही है और प्रकृति प्रदत्त हरियाली को प्रदूशित कर रही है। छत्तीसगढ़ का शांत माहौल अब औद्योगिक प्रतिष्ठानों की गर्जनाओं से कंपित और प्रदूशित होता जा रहा है। यहां के सुरम्य वादियों की चर्चा पुराणों, रामायण और महाभारत कालीन ग्रंथों में मिलती है जिसके अनुसार यहां की नदियां गंगा के समान पवित्र, मोक्षदायी है। उसी प्रकार पहाड़ों की हरियाली और मनोरम दृश्य देवी देवताओं को यहां वास करने के लिए बाध्य करता रहा है। यही कारण है कि ऋशि मुनियों ने देवताओं की एक झलक पाने के लिए अपना डेरा यहां जमाते रहे लिया हैं। यहां के जंगलों और पहाड़ों में गुफाएं आज भी देखने को मिल जायेंगे जो उस काल ऋशि मुनियों की याद दिलाते हैं। मैकल पर्वत श्रृंखला का एक अंश 'दमऊ दहरा' है जहां प्रकृति की अनुपम छटाएं हैं और पहाड़ों से गिरती जल की धारा जो पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त हैं। अतः कालेज के विद्यार्थियों ने इस बार पिकनिक जाने के लिए दमऊ दहरा को चुना।

दमऊ दहरा छत्तीसगढ़ की तत्कालीन सबसे छोटी रियासत और जांजगीर-चांपा जिलान्तर्गत दक्षिण पूर्वी रेल्वे के सक्ती स्टेशन से 15 कि.मी., औद्योगिक नगरी कोरबा से 35 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यहां बस, जीप और कार से जाया जा सकता है। यहां रूकने के लिए एक धर्मशाला भी है। सक्ती, चांपा और कोरबा में लॉज और लोक निर्माण विभाग का विश्राम गृह भी है जहां रूका जा सकता है। यहां सितंबर-अक्टूबर से जनवरी तक मौसम बड़ा अच्छा रहता है। सार्वजनिक छुट्टियों और रविवार के दिन पर्यटकों की अच्छी भीड़ होती है।

दमऊ दहरा पिकनिक जाने का प्रोग्राम तय हुआ नहीं कि मैं अपना कैमरा लोड करके वहां के मनोरम दृश्यों को कैमरे में कैद करने के लिए तैयार हो गया। मेरे मित्रों ने मुझे यहां के बारे में बहुत सी जानकारी दी जो मेरे लिए बहुत उपयोगी थी। दमऊ दहरा का प्राचीन नाम 'गुंजी' है। छत्तीसगढ़ के पुरातत्व विद् और साहित्यकार पंडित लोचनप्रसाद पांडेय के सद्प्रयास से इसे ऋषभतीर्थ नाम मिला। यहां पहाड़ों से घिरा एक गहरा कुंड है जिसमें

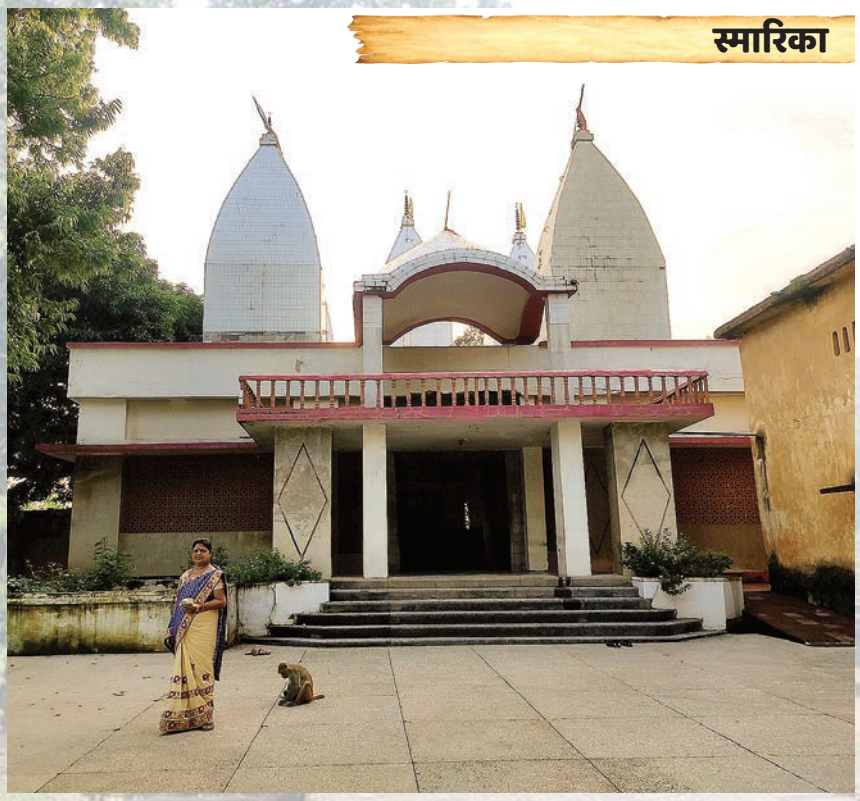

पहाड़ से निरंतर पानी गिरते रहता है। स्थानीय भाषा में गहरे कुंड को 'दहरा' कहा जाता है। मान्यता है कि इस दहरा में सक्ती रियासत के संस्थापक राजा नहाने आते थे। दहरा का पानी कुछ खट्टा होता है जो संभवतः पहाड़ से बहकर आने के कारण है। इस पानी को पीने से पेट रोग से मुक्ति मिलती है। यह ग्राम प्राचीन काल में उन्नत सांस्कृतिक केंद्रों में से एक है। यहां की पहाड़ी में साधु संतों के रहने के लिए गुफा है और दहरा के पास की पहाड़ी में एक लेख खुदा है जो सात वाहन कालीन है। उस काल का अन्य शिलालेख कोरबा और अड़भार में भी है। इस क्षेत्र में रामायण कालीन अनेक अवशेष मिलते हैं जिससे प्रतीत होता है कि श्रीरामचंद्र जी वनवास काल में यहां आये होंगे ?

बहरहाल, हम बस से दमऊ दहरा पहुंचे। सबके पास अपना अपना टिफिन था अतः खाना बनाने का झंझट ही नहीं था। यहां की हरियाली और मनोरम दृश्य को देखकर हमारा मन प्रफुल्लित हो उठा। सबका मन जैसे गाना गाने को कर रहा था। विद्यार्थियों की जिज्ञासा को जब तक मैं शांत करता, सब बस से उतरकर एक जगह अपना सामान आदि रखकर इधर उधर चल दिये। कुछ लोग जब कुंड में हाथ मुंह धोने लगे तो कुछ लोग श्री राम लक्ष्मण जानकी और भगवान ऋशभदेव मंदिर चले गये तो कुछ लोग पहाड़ में चढ़कर गुफाओं और प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने लगे। मेरी ऊंगलियां जल्दी जल्दी इस सौंदर्य को अपने कैमरे में कैद करने लगी। हम लोगों ने देखा कि पहाड़ से पानी नीचे गिर रहा है। यहां एक गहरा कुंड है और कदाचित् इसी कारण इस स्थान को 'दमऊ दहरा' कहा जाता है। वैसे चारों ओर से पहाड़ों से घिरे इस निर्जन वन में जंगली जानवरों की अधिकता रही होगी ? स्थानीय कवि श्री कुंजबिहारी शुक्ल के शब्दों में:-

दमऊ दहरा का गहरा कुंड, हाथियों का झुंड
सूंड़ से उठाकर जहां करता जल विहार।

डॉ. लोचनप्रसाद शुक्ल ने अपने खंड काव्य 'ऋशभतीर्थ' में इस कुंड को गुप्त गोदावरी बताते हुए लिखा है:-

तीन पर्वत संधियों से अनवरत जल बह रहा
गुप्त गोदवरी निरंतर नीर निर्मल नव भरा।

इससे यहां की छटा बड़ा मनोहर होता है। देखिये कवि की एक बानगी:-

गोदावरी विमल भूत अजस्र धारा,
देखो छटा जल प्रपात नितान्त रम्या।
है वाह्य रूप उभकुंड उमंगिता से,
धारामयी सलिल माचित मुग्धकारी।।

कोई भी पथिक इधर से गुजरते समय यहां की हरियाली और अनुपम सौंदर्य को देखकर पेड़ों के छांव तले थोड़ी देर विश्राम करने के लिए विवश हो जाता था। पथिक कुंड में हाथ मुंह धोकर अपनी प्यास बुझाकर विश्राम करते थे। ऐसे में मन में जल करने की इच्छा होना स्वाभाविक है मगर जलपान के लिए उनके पास कुछ नहीं होता था। लेकिन आश्चर्य किंतु सत्य, पथिक के मन मुताबिक जलपान एक थाली में सजकर उसके सम्मुख आ जाता था। पथिक कुछ समझ पाता तभी आकाशवाणी होती 'पथिक ! ये तुम्हारी क्षुधा शांत करने के लिए है, मजे से ग्रहण करो' पथिक उसे ग्रहण करके थाली को धोकर उस कुंड में रख देता था। ऐसा पता नहीं कब से होता था मगर एक पथिक की नियत खराब हो गयी और वह उस थाली को लेकर अपने घर चला गया। लेकिन घर पहुंचकर मर गया। हालांकि उसके परिवार वालों ने उस थाली को वापस उस कुंड में डाल दिया मगर तब से थाली का निकलना बंद हो गया...। मुझे लगा कि हमें भी ऐसा कुछ खाने को मिल जाता ? लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। बाद में मुझे मदनपुरगढ़ के नाला, दल्हा पहाड़ के तालाब और भोरमदेव मंदिर के तालाब से ऐसे जादुई थाली निकलने और पथिकों के भूख को शांत करने की जानकारी मिली। छत्तीसगढ़ के ऐसे अनेक किंवदंतियों में से यह भी कोई किंवदंति हो सकती है ?

यहां हम श्रीराम लक्ष्मण और जानकी मंदिर में उनके दर्शन किये। उनके अलावा यहां हमें भगवान ऋषभदेव और वीर हनुमान के दर्शन हुए। मंदिर के बाहर बंदरों के दर्शन किसी सजीव हनुमान से कम नहीं था जो हमारे हाथ से नारियल छिनकर खा लिया। पुजारी जी ने हमें बताया कि भगवान ऋशभदेव की यही प्राचीन काल में तपोभूमि थी। कवि भी यही कहता है:-

तपोभूमि यह ऋशभदेव की महिमा अमित बखान।
योगी यति मुनि देव निरंतर शाश्वत शांत प्रदान।।

मेरा लेखक मन जैसे सब कुछ समेट लेना चाहता था। घड़ी भी जैसे दौड़ रही थी और हमारे पेट में चूहे उछल कूद कर रहे थे। सभी अपने अपने ग्रुप के साथ कोई पहाड़ी में तो कोई कुंड के समीप खाना खाने लगा। खाना खाकर सभी गाना गाने बजाने लगे। तभी हम कुछ नंगे वदन व्यक्तियों को पहाड़ियों में चढ़ते देखा। मैं उनसे इस पहाड़ी के तराई में रहने वाले लोगों के बारे में जानना चाहा। पहले तो वे हिचके, फिर थोड़ी देर बाद बताने लगे-'हमारे पूर्वज यहां बरसों से निवास करते थे। उस पहाड़ी के तराई में हमारी 8-10 घर की बस्ती है। सब्जी-भाजी उगाकर, कुछ खेती करके और लकड़ी बेचकर हम अपनी जीविका चलाते हैं। सक्ती के राजा हमारी बस्ती में बिजली लगवा दिये हैं। मुझे पहाड़ी में कोई बिजली की तार नहीं दिखा। तब मुझे याद आया कि वनों और पहाड़ों में सोलर लाइट लगा होगा। मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैं इतिहास के पन्ने उलटने लगा। अभिलेखों से पता चलता है कि यहां देवताओं के दिव्य स्थल ऋषभाश्रम, ऋषभकुंड, ऋषभ सरोवर सीताकुंड, लक्ष्मणकुंड, और पंचवटी के अवशेष मिलते हैं। ऋषभतीर्थ से तीन मील की दूरी पर उत्तर दिशा में एक आश्रम है। इसके ईशान कोण पर जटायु आश्रम है। जिसके कारण इस पहाड़ को 'गिधवार पहाड़' कहते हैं। आग्नेय दिशा में राम झरोखा, राम शिला, लक्ष्मण शिला है। वायव्य दिशा में आधा मील की दूरी पर उमा महेश्वर और कुंभज ऋषि का आश्रम है। इसी कारण यहां के एक पहाड़ को 'कुम्हारा पहाड़' कहते हैं। पश्चिम दिशा में तीन मील की दूरी पर 'सीता खोलिया' तथा 10 मील की दूरी पर शूर्पणखा का स्थल था। उसके पास में कबंध राक्षस का स्थल (कोरबा) और खर दूषण की नगरी (खरौद) है। पश्चिम दिशा में ही आधा मील की दूरी पर 'मारीच खोल' है। ऐसी मान्यता है कि यहीं पर रावण ने मारीच के साथ मिलकर सीता हरण का शडयंत्र रचा था। यह स्थान रैनखोल कहलाता है। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ में अनेक रामायण कालीन अवशेष मिलते हैं। इससे इस क्षेत्र की प्राचीनता का बोध होता है।

अब शाम होने को आयी और हम सब वापसी के लिए बस में बैठ चुके थे। बस चली तो मन में राहत थी कि हरियाली के बीच जैसे कोई तीर्थयात्रा कर लिये हो ? कवि की एक बानगी पेश है:-

तीर्थ सरिता नीर से संपर्क साधन कर लिया।
मानुश तन पाकर जिन्होंने सुकृत
सब कुछ कर लिया।।

प्रो अश्विनी केशरवानी
राघव, डागा कालोनी, चाम्पा

प्रकृति का रहस्यमय संसार मंडीप खोल

प्रकृति ज्ञान और आनंद का स्रोत है। प्रकृति मनुष्य को सदैव अपनी ओर आकर्षित करती रही है। प्रकृति के आकर्षण ने मनुष्य की जिज्ञासा और उत्सुकता को हरदम प्रेरित किया है। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप मनुष्य प्रकृति के रहस्यों को जान-समझकर ही ज्ञानवान बना है। प्रकृति के हर उपादान उसे प्रेरित और आकर्षित करते हैं। इधर अन्वेशण की प्रवृत्ति ने ही मनुष्य को अधिक सुसंपन्न बनाया है। प्रकृति तो रहस्यों का पिटारा है। जंगलों में, पहाड़ों में प्रकृति के न जाने कितने अलौकिक और चमत्कारिक रूप विद्यमान हैं। उसके इन रूपों का साक्षात्कार तो उन स्थानों पर ही जाकर किया जा सकता है, जहां प्राकृतिक सौन्दर्य अपनी संपूर्णता के साथ वन - प्रान्तरों में अन्वेशकों की प्रतीक्षा में हैं ।

ऐसा ही एक रम्य और रोमांचकारी स्थान है "मंडीप खोल" । इसे मंडीप खोह के नाम से जाना जाता है । खोह अर्थात् गुफा। मंडी खोल एक प्राकृतिक गुफा है, जिसके गर्भ में प्रकृति के नाना रूप अपनी विचित्रता और रहस्यमयता के साथ समाविष्ट हैं। मंडीप खोल गंडई से लगभग 35 किमी. दूर पश्चिम में ठाकुरटोला जमींदारी के पास स्थित है। यहां पहुंचने के लिए गंडई (नर्मदा) - बालाघाट मुख्य मार्ग के किमी. 10 से आगे पश्चिम दिशा की ओर लगभग 15 कि.मी. वन मार्ग से जाना पड़ता है। यहां यह भी बताना आवश्यक है कि मंडीप खोल दर्शनार्थियों के लिए वर्ष में एक बार ही खुलता है, बैशाख शुक्ल की अक्षय तृतीया के बाद पड़ने वाले प्रथम सोमवार को इसका कारण शायद इस स्थान की बिहड़ता व निर्जनता हो सकती है। इस दिन मंडीप खोल में प्रकृति को जानने समझने के लिए पर्यटकों की बड़ी भीड़ एकत्रित होती है। ग्राम नर्मदा अर्थात् नर्मदा मैय्या के पवित्र कुंड से 1 कि.मी. की दूरी के बाद वन क्षेत्र प्रारंभ हो जाता है। सड़क के किनारे की पहाड़ियां लोगों को आंमत्रित करती हैं। हरे-भरे पेड़-पौधे जैसे हवा में हाथ लहराकर प्यार से सिर झुकाकर सबका स्वागत करते हैं। गरगरा घाटी का मनोरम दृश्य, ऊंचे-ऊंचे सागौन के वृक्ष और जंगलों से आती वनफूलों की खुशबू मन को आनंद से विभोर कर देती है। गरगरा के पास ही स्थित है- डोंगेश्वर धाम चोड़रापाट। प्राकृतिक सुशमा से परिपूर्ण । इसका भी अवलोकन मन को सुकून देता है। कितनी उदार है यहां प्रकृति, जो अपने सौन्दर्य आभा से आंखों को तृप्त करती है ।

जंगलपुर, अचानकपुर, चुचरूंगपुर, ठाकुरटोला रास्ते में पड़ने वाले गांव हैं। जहां के भोले-भाले और सहृदयी ग्रामीण जन हंसते-मुस्कराते मिल जाते हैं। ठाकुरटोला पुरानी जमींदारी है। ठाकुरटोला के जमींदार परिवार द्वारा ही मंडीप खोल में प्रथम पूजा-अर्चना की जाती है। यह परम्परा कब से है? इसकी निश्चित जानकारी कोई नहीं दे पाता। पर मंडीप खोल में जमींदार परिवार द्वारा पूजा-प्रार्थना की परम्परा प्राचीन है। मंडीप खोल को भूतपूर्व जमींदार स्व. कप्तानलाल पुलस्त्य ने व्यवस्थित व प्रचारित किया। वर्तमान में उनके सुपुत्र वासुदेव सिंह पुलस्त्य के मार्गदर्शन में यहां मेला संपन्न होता है। ठाकुरटोला राज परिवार द्वारा मेले में आये यात्रियों के लिए भोजन आदि का प्रबंध किया जाता है। यह उल्लेखनीय बात है। अब तो यह भी प्रयास किया जा रहा है कि यात्री जब चाहें यहां आकर मंडीप खोल का भ्रमण व अवलोकन कर सकें।

ठाकुरटोला से आगे चलकर जैसे ही मंडीप खोल की ओर पश्चिम दिशा में प्रवेश करते हैं, मार्ग थोड़ा कठिन हो जाता है। उबड़-खाबड़ रास्ते पर थोड़ी कठिनाईयाँ के बाद दो पहिया या चार पहिया वाहनों से गन्तव्य तक पहुँचा जा सकता है। जंगली रास्ते में एक ही नाले को 10-12 बार पार करना पड़ता है। नाले का शीतल जल तन-मन को शांति देता है। ऊंचे-ऊंचे पेड़, बांसों के झुरमुट, घनी छाया वाले आम के फल व चार तेंदू यात्रियों के मन को ललचाते हैं।

शाखों से फूटती नन्हीं-नन्हीं कोपलें, चिड़ियों का कलरव और मदमाती हवा तन-मन को पुलकित करती है। लोगों की भीड़ हृदय में उत्साह का संचार करती है।

चारों ओर ऊंची पहाड़ियाँ यात्रियों को प्रेरित करती हैं, ऊँचा बनने के लिए। यहाँ आकर यात्री प्रकृति की सुन्दरता में खो जाता है। पर धीरज रखिये प्रकृति की अलौकिकता और उसके रहस्य को जानने के लिए मंडीप खोल के भीतर प्रवेश करना होगा । भीतर जाने के लिए अपने साथ प्रकाश की समुचित व्यवस्था यथा- बड़ा टॉर्च, पेट्रोमेक्स या सर्च लाईट आवश्यक है।

मंडीप खोल की गुफा अत्यंत प्राचीन है। यह उतनी ही प्राचीन है जितनी कि हमारी सृष्टि। वह इसलिए कि गुफा का निर्माण एक पहाड़ी नाले से जान पड़ता है। वर्षा के दिनों में नाले का जल पहाड़ी के भीतर प्रवेश कर उसी पहाड़ी के दूसरी ओर निकल गया है। जहां से झरने के रूप में यह नाला अपनी यात्रा प्रारंभ करता है। इस स्थान को "सेतगंगा " कहते हैं। सेतगंगा का निर्मल जल कभी नहीं सूखता। जलस्रोत अदृश्य है। जैविक दृष्टि से सेतगंगा की अपनी अलग ही महत्ता है । यहाँ पर पायी जाने वाली मकड़ी, झिंगुर व मछलियां विशेष प्रकार की जान पड़ती हैं। यह जीव-विज्ञानियों के लिए अनुसंधान का विशय है। लोग यहाँ आकर सेतगंगा में स्नान कर पुण्य का भागी बनते हैं।

मंडीप खोल के भीतर घना अंधकार है। यहाँ हाथ को हाथ नहीं सूझता। ऐसे में प्रवेश की समुचित व्यवस्था साथ में होना जरूरी है । प्रकाश व्यवस्था के बिना गुफा में प्रवेश करना संभव ही नहीं है। मंडीप खोल का मुख्य प्रवेश द्वार उत्तर की ओर है। दक्षिण की ओर से भी प्रवेश किया जा सकता है, किन्तु यह मार्ग कठिन और सकरा है। कई स्थानों पर लेटकर या घसीट कर निकलना पड़ता है। जानकार लोगों के साथ ही यहाँ इस मार्ग से प्रवेश करना उचित है।

प्राकृतिक रूप से निर्मित उत्तरी प्रवेश द्वार से भीतर जाने के बाद आगे बढ़ने के लिए झुककर चलना पड़ता है। फिर एक बड़े हाल की तरह आह्लादकारी स्थान यात्री के मन को रोमांच से भर देता है। गुफा के भीतर कई गुफाएँ मंडीप खोल की विशेशता है। लम्बी और चौड़ी गुफाएं। यहाँ आकर ही प्रकृति की विचित्रता का अनुभव किया जा सकता है। बायीं ओर की गुफा चमगादड़ खोल कहलाती है। यहां चमगादड़ होने के कारण स्थानीय लोगों ने इस गुफा को चमगादड़ खोल का नाम दिया है। चमगादड़ खोल में शुभ रजतमय प्राकृतिक संरचना को देखकर अचंभित होना स्वाभाविक है।

यहाँ की प्राकृतिक संरचना को देखना स्वर्गिक सुख की प्राप्ति करना है। उन संरचनाओं पर जब प्रकाश पड़ता है, तो वहाँ से अलौकिक किरणें निकलती दिखायी पड़ती हैं और देखने वाला वाह वाह कर अभिभूत हो जाता है। चमगादड़ खोल में पैरों के नीचे की नरम भुरभुरी मिट्टी, ऊपर रासायनिक क्रिया से निर्मित होने वाली धवल प्रस्तर संरचनाएं भू-वेत्ताओं व रसायनज्ञों के लिए निश्चित रूप से शोध से ही यहाँ की अद्भूत संरचनाएँ आम लोगों के समझ में आ पायेंगी। तब यह सिद्ध हो पायेगा कि मंडीप खोल की प्राकृतिक संरचना हजारों वर्ष पुरानी है ।

चमगादड़ खोल से वापस लौटकर आगे बढ़ने पर ऊपर शिवलिंग की मूर्ति है। जहाँ श्रद्धालुओं द्वारा इसकी पूजा-अर्चना की जाती है। यहाँ पहुंचने के लिए बांस की सीढ़ी लगायी जाती है। तभी लोग ऊपर पहुंच पाते हैं। यह काफी कठिन चढ़ाई है। पर प्रकृति को जानने की उत्सुकता सारी कठिनाईयों को सरल बना देती है। मंडीप खोल में पाताल खोल की अपनी अलग विशेशता है। इसकी गहराई बहुत अधिक है और नीचे घना अंधकार है। अतः लोगों ने इसे पाताल खोल का नाम दिया है।

मंडीप खोल में कई स्थानों पर छत से पानी की बूंदें

टपकती दिखायी पड़ती है, जो प्रकाश पड़ने पर अद्भुत रूप से प्रकाशित होती हैं। फलस्वरूप कौतूहल वश उन बूंदों को स्पर्श कर आनंद का सहज अनुभव होता है। जैसे-जैसे गुफा में आगे बढ़ते हैं, प्रकृति तन्मयता के साथ इस गुफा रहस्यों के नये-नये अध्याय और उसके लिए नये-नये द्वार खोलती जाती है। लेटकर, घसीटकर आगे बढ़े कि गुफा का विस्तृत दायरा मन को रोमांचित कर देता है । गुफा के अंदर की मनोरम आकृतियाँ और संरचना उस निराकार चितेरे का कमाल है, जिसे हम देख नहीं पाते। किन्तु यहाँ आकर उस कृतिकार के कलारूप और उसकी उपस्थिति का अनुभव किया जा सकता है। प्रकृति द्वारा निर्मित इन अनोखी आकृतियों को देखकर आंखें थकती नहीं देखते ही रहने को मन करता है।

यहां की विचित्रता, सुन्दरता और उसकी विशेशताएं देखकर लोगों ने इन गुफाओं को अलग-अलग नाम दिया है। जैसे- इन्द्रलोक गुफा इन्द्रलोक की तरह ही शोभायमान, मीना बाजार गुफा आदि । इन सबकी संरचनाओं की विशेशताएं भिन्न-भिन्न हैं। सैकड़ों की संख्या में प्राकृतिक रूप से उद्भूत यहाँ शिवलिंग विशेश दर्शनीय हैं। ये आकृतियाँ अमरनाथ गुफा की स्मरण कराती हैं। इन्हें देखकर बरबस ही हृदय आस्था से भर जाता है, सिर श्रद्धा से झुक जाता है। प्रकृति के ये विस्मयकारी शिवलिंग अंग-अंग को आल्हादित कर देते हैं । ऐसा सुदर्शन और आनंददायक स्थान अन्यत्र शायद ही मिले।

मंडीप खोल की गुफाएं और उसकी प्राकृतिक संरचनाएं हृदय को रहस्य व रोमांच से भर देती है। मंडीप खोल की गुफाएं किसी भी रूप में कुटुमसर की गुफाओं से कमतर नहीं है। आवश्यकता की है कि समुचित ढंग से व समग्र रूप से मंडीप खोल की गुफाओं का वैज्ञानिक सर्वेक्षण हो । यहां की प्राकृतिक संरचनाओं और यहां पाये जाने वाले जीव-जन्तुओं पर शोध हो । यहां तक पहुंचने के लिए सुगम मार्ग का निर्माण हो। यात्रियों के लिए पेयजल, विश्राम आदि की व्यवस्था हो । इसकी विशेशताओं को प्रचारित किया जाये। क्योंकि राजनांदगांव जिले में इस तरह की गुफाएँ अन्यत्र शायद ही हों।

मंडीप खोल की गुफाओं की और संभवतः छत्तीसगढ़ शासन पर्यटन विभाग का ध्यान नहीं गया है। यदि पर्यटन विभाग इस गुफा को अपने संरक्षण में ले लेता है तो निश्चित रूप से पर्यटन विभाग के लिए यह बड़ी उपलब्धि होगी और इसका विकास भी संभव हो पायेगा। इसके लिए इस क्षेत्र के जनप्रतिनिधियों के द्वारा प्रयास की दरकार है।

आज मंडीप खोल गुफा की सुरक्षा की भी बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि यहाँ आने वाले यात्री कौतूहलवश गुफा की भीतरी संरचनाओं को तोड़कर नुकसान पहुंचाते हैं। उन्हें क्या मालूम कि ऐसी प्राकृतिक संरचनाओं और आकृतियों के निर्माण में सैंकड़ों वर्ष लग जाते हैं? वे इसके महत्व से अनभिज्ञ हैं। उन्हें इन प्राकृतिक संरचनाओं के महत्व को समझाना होगा, ताकि रहस्य व रोमांच से भरी मंडीप खोल की अमूल्य प्राकृतिक धरोहर भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रह सके।

आजकल तो लोगों में मंडीप खोल के खोजकर्ता बनने की होड़ लगी हुई है। कुछ स्वनाम धन्य लोगों ने अपने आपको मंडीप खोल का खोज कर्ता कह कर प्रचारित किया है। भला जिस गुफा में जमीदार परिवार द्वारा लगभग तीन-चार पीढ़ियों से पूजा अर्चना की जा रही है। तब से क्षेत्र के लोगों के लिए जो गुफा आस्था का केन्द्र है। उस गुफा में भला तीन-चार साल या साल भर से आने वाले लोग मंडीप खोल के खोजकर्ता कैसे हो सकते हैं? इन महानुभावों ने तो मंडीप खोल के पारंपरिक नाम को ही बदल कर किसी ने "मनदीप खोल" तो किसी ने गिरिकंदरा मंडी खोल बना दिया है। ऐसे महानुभाव मंडीप खोल के खोजकर्ता बनने के बजाय मंडीप खोल की भीतरी संरचनाओं, जीव जन्तुओं आदि पर शोध कर मंडीप खोल की विशेशताओं से लोगों को अवगत करायें तो यह ज्यादा श्रेयस्कर होगा।

डॉ पीसीलाल यादव
गंडई पंडरिया, छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ में चौमासा

जेठ की भीषण तपन के बाद जब बरसात की पहली फ़ुहार पड़ती है तब छत्तीसगढ़ अंचल में किसान अपने खेतों की अकरस (पहली) जुताई प्रारंभ कर देता है। इस पहली वर्षा से खेतों में खर पतवार उग आती है तब वर्षा से नरम हुई जमीन पर किसान हल चलाता है जिससे खर पतवार की जड़ उखड़ने एवं धूप पड़ने से वह नष्ट हो जाती है तथा खेत फ़सल की बुआई के लिए तैयार हो जाता है। बस यही समय जेठ मास के जाने का एवं आषाढ़ मास के आने का होता है। कहना चाहिए कि यह समय चौमासे के प्रारंभ होने का होता है। पौराणिक दृष्टि से आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि से लेकर कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी तक के आषाढ़, सावन, भादो, आश्विन नामक ये चार महीने सनातन परंपरा में चौमासा कहलाते हैं। चौमासा नाम से विदित होता है कि यह वर्षाकाल है एवं इस काल में तीर्थाटन एवं देशाटन नहीं होता। छत्तीसगढ़ अंचल में कृषि कार्यों से जुड़े हुए लगभग सभी पर्व त्यौहार चौमासे में ही मनाए जाते हैं। छत्तीसगढ़ अंचल का चौमासा बड़ा ही सुंदर होता है, चारों ओर प्रकृति हरित परिधान धारण कर लेती है। जेठ मास में सूखे हुए वृक्ष एवं पौधे चौमासे की पहली फ़ुहार के साथ हरे हो जाते है तथा बीजो से नवांकुरण प्रारंभ हो जाता है। इसी समय छत्तीसगढ़ में तीज त्यौहार प्रारंभ हो जाते हैं।

जुड़वासन तिहार – आषाढ़ मास की अमावश्या को जुड़वासन तिहार मनाया जाता है। छत्तीसगढ़ के गाँवों में तालाबों के की पार पर सीतला माता का स्थान होता है। यह स्थान तालाबों की पार पर इस लिए होता है कि तालाब से पानी लेकर सीतला माता को चढ़ाया जा सके। इस दिन ग्रामीण जन गाँव के बैगा (ग्राम पुजारी) की अगुवाई में सीतला माता की पूजा पूरे विधि विधान से करते हैं। सीतला माता की सेवा में ग्रामीण भक्त सेवा गीत गाते हैं तथा महिलाएं सीतला माता को चावल चढ़ाती हैं और सीतला माता से आरोग्य की कामना करती हैं।

रथयात्रा – छत्तीसगढ़ अंचल में रथदूज या रथयात्रा का पर्व धूमधाम से मनाया जाता है, जगह-जगह भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा निकाली जाती है तथा इस दिन मांगलिक कार्य करना भी शुभ माना जाता है। वैसे तो मुख्य रथयात्रा का पर्व उड़ीसा के पुरी में मनाया जाता है, परन्तु छत्तीसगढ़ की सीमा साथ उड़ीसा के साथ लगे होने एवं सांस्कृतिक संबंध होने के कारण वहाँ के तीज त्यौहारों का असर छत्तीसगढी जनमानस पर भी दिखाई देता है। यह पर्व छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा के बीच सांस्कृतिक सेतू का कार्य भी करता है तथा राष्ट्र को एकता के सूत्र में भी बांधता है।

सवनाही – सावन के प्रथम सप्ताह में आने वाले प्रथम रविवार को "सवनाही तिहार" मनाने की परम्परा सदियों से चली आ रही है। इस त्यौहार को मनाने के पीछे उद्देश्य है कि जादू-टोना हारी-बीमारी से गाँव के जन, गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़ एवं अन्य पालतू जीव जंतुओं की हानि न हो। गाँव में चेचक, हैजा जैसी बीमारियां प्रवेश न करें। सभी सानंद रहें।

सवनाही तिहार मनाने के लिए पहला रविवार ही निश्चित किया जाता है। गाँव का कोटवार इसकी सूचना हाँका करके समस्त ग्रामवासियों को देता है। इस दिन गाँव में सभी कार्य बंद रहते हैं। गाँव का निवासी यदि कहीं गाँव से बाहर भी काम करने जाता है तो उस दिन उसे भी छुट्टी करनी पड़ती है। खेतों में कोई हल नहीं जोतता, कोई बैलागाड़ी नहीं फ़ांदता। सभी के लिए यह अनिवार्य छुट्टी का दिन होता है। अगर कोई इस आदेश का उल्लंघन करता है तो उसके दंड की व्यवस्था भी है। दंड खिलाने-पिलाने से लेकर आर्थिक भी हो सकता है। इतवारी के दिन सिर्फ़ गाँव के चौकीदार को काम करने की छूट रहती है। सवनाही तिहार मनाने के लिए गाँव में बरार (चंदा) किया जाता है। जिससे पूजा पाठ का सामान खरीदा जाता है और बैगा की दान-दक्षिणा दी जाती है। सवनाही पूजा करने बाद ही गाँव में इतवारी छुट्टी मनाने की परम्परा है। जो 5-7 इतवार तक मानी जाती है। अधिकतर गांवों में पाँच इतवार ही छुट्टी की जाती है।

शनिवार की रात में बैगा के साथ प्रमुख किसान गाँव के समस्त देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इस रात बैगा के साथ जाने वाले समस्त लोग रात भर घर नहीं जाते और सोते भी नहीं। गाँव के किसी सार्वजनिक स्थान (मंदिर, देवाला, स्कूल) में रात काट देते हैं। फ़िर रविवार को पहाती (सुबह) होते ही चरवाहे गाँव के सभी मवेशियों को को चारागन में इकट्ठा कर देते हैं, उसके बाद मवेशियों के मालिक अपने घर से पलाश के पत्ते में कोड़हा (धान का चिकना भूसा) से बनी हुई अंगाकर रोटी के साथ कुछ द्रव्य लाकर राऊत और बैगा को देते हैं। जिसे लेकर बैगा और राऊत मवेशियों के साथ गाँव की पूर्व दिशा में सरहद (सियार) पर जाते हैं। वहाँ स्थित सवनाही देवी की पूजा की जाती है। पूजा के लिए एक जोड़ा नारियल, सिंदूर, नींबू, श्रृंगार का सामान, काले, सफ़ेद, लाल झंडे, टुकनी, सुपली, चूड़ी, रिबन, फ़ीता के साथ काली मुर्गी एवं कहीं-कहीं दारु का इस्तेमाल भी किया जाता है। पूजा के लिए नीम की लकड़ी की छोटी सी गाड़ी बनाई जाती है। जिसे लाल,काले और सफ़ेद ध्वजाओं से सजाया जाता है।

बैगा अपने साथ लाया हुआ पूजा का सामान देवी को अर्पित करता है और समस्त ग्राम देवी-देवताओं का स्मरण कर गाँव की कुशलता की प्रार्थना करता है। इसके बाद देवी की सात बार परिक्रमा करके कोड़हा की रोटी का देवी को भोग लगाकर सियार के उस पार रख देता है। इसके पश्चात काली मुर्गी के सिर पर सिंदूर लगा कर उसे सियार के उस पार भुत-प्रेत-रक्सा की भेंट के लिए छोड़ दिया जाता है। फ़िर बैगा वहां से चल पड़ता है, इस समय उपस्थित लोगों के लिए पीछे मुड़ कर देखना वर्जित होता है। ऐसी मान्यता है कि पीछे मुड़ कर देखने से सवनाही देवी नाराज होकर सभी भूत-प्रेतों को सियार (सरहद) पर ही छोड़ कर चली जाती है। सभी जानवरों को वापस गाँव में लाया जाता है। नारियल फ़ोड़ कर प्रसाद बांटा जाता है, यह प्रसाद सिर्फ़ उन्हे ही दिया जाता है जो बैगा के साथ पूजा-पाठ में सम्मिलित रहते हैं। भोग लगाने के बाद बची हुई कोड़हा की रोटी को मवेशियों को खिलाया जाता है।

सवनाही तिहार के दिन लोग घरों में गाय के गोबर से हाथ की 4 अंगुलियों द्वारा घर के दरवाजे पर आदिम आकृति बनाई जाती है। जो कहीं मनुष्याकृति होती है तो कहीं शेर इत्यादि बनाने की परम्परा है। इन आकृतियों से जोड़ कर चार अंगुलियों की गोबर की रेखा घर के चारों तरफ़ बनाई जाती है। जैसे गोबर की रेखा से घर को चारों तरफ़ से बांध दिया गया हो। इस बंधने का उद्देश्य यही है कि कोई भूत प्रेत या गैबी शक्ति घर के निवासियों को परेशान न करे।

नाग पंचमी – श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को नाग पंचमी के रूप में मनाया जाता है। नाग व सर्पों से रक्षा इस पर्व का अभिष्ट है। बरसात के दिन में सांप अपने बिल से निकल आते हैं। यही वजह है इस पर्व की लोकमान्यता के पीछे। अखाड़ों में विशेष पूजा की परम्परा है और कुश्ती की प्रतियोगिता भी होती है।

हरेली तिहार – प्रकृति जब नवकलेवर को धारण करने लगती है तब सावन मास का आगमन होता है। यह मास देवी देवताओं की पूजा के नाम से महत्वपूर्ण है। लगभग सभी प्रमुख त्यौहार इस मास में ही होते हैं। हरेली का त्यौहार मनाया जाता है। हरेली तिहार सावन मास की अमावश्या को मनाया जाता है। इस समय किसान अपने खेतों में फ़सल की बुआई कर चुका होता है तथा फ़सल बोने के बाद इसे पहला त्यौहार माना जा सकता है।

'हरेली' हरियाली का लोक रूप है। यह सावन माह में अमावस्या को मनाई जाती है। जब कृषक की बोनी, बियासी पूरी हो जाती है तब वह अपने कृषि औजारां की साफ-सफाई कर उनकी पूजा करता है। नांगर, जुड़ा, रापा, कुदारी, चतवार, हंसिया, टंगिया, बसुला, बिंधना आदि उन उन सभी औजारों की, जो कृषि कार्य में सहायक होते हैं, की पूजा की जाती है। पशुधन के बिना तो कृषि कार्य कतई संभव नहीं है। हरेली के दिन प्रातः पशुओं को आटे में नमक की लोंदी और वनोषधि खिलाई जाती है। ताकि वे निरोग रहें। कृषि औजारों की पूजा कर उन्हें 'चीला और सोहारी' चढ़ाया जाता है, राऊत गाँव में प्रत्येक घर जाकर घर के मुख्य द्वार पर 'दशमूर' और नीम की डंगाली खोंचता है। राऊत का यह कार्य उस घर परिवार के लिए निरोग रहने की कामना का प्रतीक है। बदले में गृह स्वामिनी उसे 'सीधा' के रूप में चांवल, दाल व द्रव्य देती है। यह लोक मंगल की कामना का अद्भूत उदाहरण है। कुल मिलाकर हरेली कृषि संस्कृति का मंगल पर्व हैं।

भोजली – भोजली पर्व सावन महीने में मनाया जाता है। भोजली मूलतः ग्रामीण जीवन की संस्कृति की उपज है। यह नागर जीवन में सर्वथा दुर्लभ है। भोजली उस प्रकृति के प्रारंभिक सौंदर्य की सुखानुभूति की अभिव्यक्ति है, जिसमें कोई बीज अंकुरित होकर अपने अलौकिक स्वरूप से सृष्टि का श्रृंगार करता है। श्रावण के शुक्ल पक्ष में सप्तमी या अष्टमी के दिन कुम्हार आवा की काली मिट्टी डालकर किशोरियों द्वारा गेहूं के दाने पूरी श्रद्धा अैर भक्ति के साथ बोए जाते हैं। ये उगे हुए पौधे ही भोजली देवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। यहीं है भोजली, यही है गंगा। अर्थात 'भोजली गंगा' प्रकृति द्वारा प्रकृति की पूजा। प्रकृति वह जो नया सृजन करे या सृजन की प्रेरणा दे। किशोरियाँ भी तो नारी के रूप में मानव-जीवन का सृजन करती हैं। किशोरियाँ और उन्हीं की देखा-सीखी नन्ही बालिकाएँ भोजली के सृजन से लेकर विसर्जन तक मंगल गीत गाती हैं। बालिकाएँ भोजली की जड़ों को प्रवाहित कर भोजली घर ले आती हैं। नदी-तालाब के तट पर गाँव में आकर सुवा नृत्य करती हैं। बालिकाओं द्वारा गाँव के देव स्थलों में देवताओं को भोजली अर्पित किया जाता है। तत्पश्चात् भोजली के माध्यम से गाँव के लोग स्नेह सूत्र में बंधते हैं। जिससे मन मिलता हो, जिससे आचार-विचार मिलता हो, जिससे प्रेम हो ऐसे साथी के कान में भोजली खांचकर भोजली बदा जाता है। यह बदना लोगों को जीवन पर्यन्त के लिए मित्रता के सूत्र में बांध जाता है। भोजली बदने के लिए उम्र का कोई बंधन नहीं होता। भोजली एक दूसरे को सीताराम भोजली कहकर अभिवादन करते हैं। यह बंधन परिवारिक और आत्मीय रिश्तों में तब्दील हो जाता है। बंधन में बंधने वाला मित्र या सहेलियां एक-दूसरे क नाम नहीं लेते, बल्कि भोजली कहकर संबोधित करते है। एक-दूसरे की माँ को परस्पर फूल दाई तथा बाप को फूल ददा कहकर मान देते हैं। भोजली का यह लोक पर्व सारे गाँव को एक सूत्र में बांधता है।

रक्षाबंधन – श्रावण माह की पूर्णिमा रक्षाबंधन का त्योहार है। छत्तीसगढ़ में भी परंपरागत रूप से राखी का पर्व मनाया जाता है।

बहुरा चौथ – भादो माह की चतुर्थी को बहुरा चौथ या बहुला चौथ का पर्व मनाया जाता है। माताएं अपने बच्चों की दीर्घायु के लिए यह व्रत रखती हैं। गाय की पूजा भी की जाती है। गुड़ और जव के आटे से लड्डू बनाने की प्रथा है।

कमर छठ – हल षष्ठी के नाम से भी यह व्रत माताएं बच्चों के निमित्त रखती हैं। इस दिन वे गाय के दूध, दही और घी का उपयोग नहीं करतीं। पांच किस्म की भाजियों से बनी सब्जी और पसहर चाउंर (वाइल्ड राइस) से बने भात का भोजन करती हैं। कुआंरी जमीन से उपजे चावल को पसहर चावल कहते हैं। कांस के फूल का इस व्रत में विशेष महत्व होता है। भौंरा-बांटी आदि खिलौनों की भी पूजा की जाती है। पोता लगाने की परंपरा है। छुई मिट्टी से पीले रंग का और कोयले से काले रंग का पोता बनाया जाता है। कपड़े के टुकड़े से पोता बनता है जिसे माताएं लड़कों की पीठ पर लगाती हैं और फिर अपने आंचल से पोंछती हैं।

आठे कन्हैया – आठे कन्हैया लोक संस्थापक श्री कृष्ण के जन्मोत्सव का केवल प्रतीक मात्र ही नहीं अपितु समूह की शक्ति को प्रतिस्थापित करने का पर्व है। उन्होंने हठी इन्द्र के मान-मर्दन व लोक रक्षण के लिए गोवर्धन पर्वत उठाया था। तब ग्वाल बालों के समूह ने जिस शक्ति शौर्य और सहयोग का प्रदर्शन किया था। आज लोक को उसी शक्ति शौर्य और सहयोग की आवश्यकता है। इसी लोक संगठन के रूप में श्रीकृष्ण लोक में ज्यादा पूज्य हैं।

आठे कन्हैया भादो महीने के कृष्ण पक्ष में अष्टमी को मनाया जाता है। संयोग देखिए कि श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाली आठवीं सन्तान थे और उनका लोक अवतरण भी अष्टमी को हुआ। लोक को इन दोनों कारणों ने प्रभावित किया। इसलिए श्रीकृष्ण जन्माष्टमी को लोक ने आठे कन्हैया के रूप में स्वीकार किया। इस पर भी लोक की यह आस्था देखिए कि आठे कन्हैया के दिन ग्रामीण जन आठ बालचित्रों को दीवाल पर चित्रित कर पूजते हैं।

तरह-तरह के फलाहारी व्यंजन खासतौर पर बनाए जाते है। सिंघाड़ा, तिखूर, राईजीरा के लड्डू, कोचई की पपची और गुड़ में पाग कर बैचांदी का भोग लगाया जाता है। मंदिरों में मालपुआ, पंजरी के अलावा छप्पन भोग लगाने की परंपरा है। रायपुर के दूधाधारी मठ, जैतुसाव मठ, गोपाल चंद्रमा मंदिर, इस्कॉन और खाटू श्याम मंदिर भक्तों के विशेष आकर्षण का केन्द्र होते हैं।

नवाखाई (नवान्न ग्रहण)- छत्तीसगढ में नवाखाई का पंरपराओं में विशेष स्थान है। नवाखाई का मतलब है-नये अन्न को भोजन के रूप में खाने की शुरूआत करना। भारतीय परंपरा में जब भी किसी चीज का हम उपभोग करते हैं, तो उसे देव आराधना के साथ करते हैं। नवाखाई को अलग-अलग समुदाय के लोग अलग-अलग दिवस में मनाते हैं।

बस्तर के वनवासी समुदाय के लोग इस पर्व को भादो मास में मनाते हैं। धान की नई फसल आने की शुरूआत हो जाती है। नए धान के चावल से खीर बनती हैं। पूजा अर्चना के पश्चात नए चावल से बने खीर को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। बस्तर में ही सवर्ण समुदाय के लोग इस पर्व को राजा के साथ दशहरे के दिन मनाते हैं। इसी प्रकार मध्य छत्तीसगढ़ में इस पर्व को दशहरे के आसपास मनाया जाता है।

पोरा (पोला) – पोला पर्व भादों मास के अमवस्या के दिन

मनाया जाता है। इस दिन को अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग तरह से मनाया जाता है। इस पर्व की शहर से लेकर गांव तक धूम रहती है। जगह-जगह बैलों की पूजा-अर्चना होती है। गांव के किसान भाई सुबह से ही बैलों को नहला-धुलाकर सजाते हैं, फिर हर घर में उनकी विधि-विधान से पूजा-अर्चना की जाती है। इसके बाद घरों में बने पकवान भी बैलों को खिलाए जाते हैं।

इस पर्व दूसरा पक्ष है गर्भाही। पोला को आज भी ग्रामीण इलाकों में गर्भाही तिहार (त्यौहार) के रूप में जाना जाता है या मनाया जाता है। गर्भाही अर्थात् गर्भधारण करना। भादो अमावस्या के आते-आते ऐसी मान्यता है कि धान के पौधों में पोटरी आ जाता है, दूध भर आता है। पोटरी अर्थात् पुष्ट होना। पुष्ट होने का अर्थ केवल सबल होना नहीं है, बल्कि धान के पौधों का गर्भधारण करना है। अर्थात् धान के पौधों के भीतर बालियों का अपरिपक्व रूप में आना है। इसे ही पोटरी आना कहते हैं। इसीलिए इस त्यौहार को गर्भाही तिहार कहते हैं। गर्भाही तिहार का छत्तीसगढ़ में बड़ा महत्व है। बल्कि इसका सुन्दर मानवीयकरण का पक्ष है।

पोला के दिन कृषक अपने खेतों में चीला चढ़ाता है। चीला चढ़ाने का भी एक विधान है। इसे हम लोक रूप में पूजा विधान की तरह देख सकते हैं। कृषक घर पर गेंहूँ का मीठा चीला बनवाता है और एक थाली में रोली, चंदन, दीप, नारियल, अगरबत्ती आदि पूजा का समान रखकर खेत में जाता है और खेत के भीतर एक किनारे में पूजा विधान कर घर से लाये हुए चीला को वहीं आदर पूर्वक मिट्टी में दबा देता है। और अभ्यर्थना करता है कि उसकी फसल अच्छी हो। किसी तरह रोग-दोष ना आये। इसका अंतर्भाव यह भी हो सकता है। पुष्ट देह होगी तभी तो फसल भी पुष्ट होगी।

गर्भाही तिहार का भाव और प्रक्रिया ठीक उसी तरह की है, जब बेटियाँ गर्भधारण करतीं हैं, तब मायके से 'सधौरी' ले जाने की परंपरा है। सधौरी माने विविध प्रकार के पकवान। कहने का अभिप्राय यह है कि गर्भावस्था में कुछ खाने की अधिक इच्छा होती है, उसी साध को पूरा करने के लिए मातृ पक्ष से यह आयोजन किया जाता है। ठीक उसी प्रकार कृषकों के खेतों में धान के पौधे में पोटरी आने लगता है, तब उसे बेटी सदृश्य मानकर चीला चढ़ाते हैं, यह कृषि परंपरा का एक मानवीय स्वरूप और उदार भाव है।

यह त्यौहार बच्चों के लिए भी बहुत महत्व रखता है। इस दिन को हम कृषि पर्व के रूप में तो मनाते ही हैं। पर मुझे इसमें शैव परंपरा का भी भाव दिखता है। इस दिन बैलों की पूजा के साथ-साथ मिट्टी के बैलों की पूजा और पोरा-जांता की भी पूजा की जाती है। पूजा के पश्चात मिट्टी के बैलों को लड़के और पोरा-जांता लड़कियाँ खेलती हैं।

इस मिट्टी के बैल को भगवान शिव के सवारी नंदी मान कर पूजा किया जाता है। वहीं पोरा-जांता को शिव का स्वरूप मानकर पूजा जाता है। बच्चे इस दिन गेंड़ी जुलुस भी निकालते हैं। यह गेंड़ी चढ़ने का अंतिम दिन होता है। पोला के दूसरे दिन गेंड़ी को विसर्जित कर देते हैं। इस तरह हम इस पर्व में अनेक तत्वों का समावेश पाते हैं।

तीजा – भादो में ही स्त्रियों का अत्यंत महत्वपूर्ण हस्तालिका व्रत भी होता है। इस दिन सुहागिनें पति के लिए मंगलकामनाएं कर निर्जला व्रतरखती हैं। दूसरे दिन मायके में व्रत का पारायण होता है नई साड़ी और श्रृंगार सामग्री भेंट की जाती है। तीज उपवास की पूर्व रात्रि "करू-भात" का रिवाज है। महिलाएं मायके में इस प्रथा को निभाती हैं। भोजन में करेले का विशेष महत्व होता है। भाई बहन के ससुराल जाकर उसे मायके में लिवा लाता है। यदि ऐसा संभव न हो तो तीज के दूसरे दिन बहन के लिए मायके से साड़ी, श्रृंगार सामग्री और खुरमी-ठेठरी अवश्य भेजी जाती है।

गणेश चतुर्थी – भादो माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को गणेश जी की प्रतिमा स्थापित कर दस दिनों तक उत्सवपूर्वक उनकी आराधना होती है। ककड़ी और मोदक का भोग विशेष रूप से अर्पित किया जाता है। रायपुर का गणेशोत्सव प्रसिद्ध है। मनमोहक स्थल सजावट और विशालकाय प्रतिमाएं मुग्ध कर देती हैं। आखिरी के तीन-चार रातें तो मेंले जैसा वातावरण निर्मित करती हैं। पहले अनेक किस्म के सांस्कृतिक और मनोरंजक कार्यक्रम भी हुआ करते थे। सन् 1893 में एक यात्री साधुचरण भारत भ्रमण करते रायपुर पहुंचा था। उसने अपनी यात्रा-वृतांत, भारत भ्रमण के चौथे खंड में उल्लेख किया है कि राजातालाब में गणेश प्रतिमाओं का विसर्जन किया जाता है तात्पर्य यह कि रायपुर में सार्वजनिक गणेशत्सव की परंपरा प्राचीन है अनंत चौदस को गणपति विसर्जन होता है। बड़ी गणपति प्रतिमाओं का विसर्जन एक दिन के बाद किया जाता है। राजनांदगांव की विसर्जन झांकियां रायपुर आती हैं जो दर्शनीय होती है।

नेवरात – अश्विन शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा यानी प्रथम तिथि से शारदीय नवरात्रि प्रारंभ होती है। इसे क्वांर नवरात्रि भी कहते हैं। अश्विन माह को आंचलिक भाषा में कुआंर या क्वांर कहा जाता है। मंदिरों और घरों में अखंड ज्योति प्रज्वलित कर जवांरा बोया जाता है

दसरहा (दशहरा) - अश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी दशहरा या विजयदशमी का पर्व होता है। संध्या रावणभाठा में रावण वध होता है। रावण वध के पश्चात् घरों में पुरूष सदस्यों की आरती उतारी जाती है तथा दही-चावल का तिलक किया जाता है। सोनपत्ती (शमी-पत्र) का अदान-प्रदान कर शुभकामनाएं व्यक्त की जाती है। दिन-भर पतंगबाजी होती है। रायपुर के रावणभाठा डब्ल्यूआरएस कालोनी और चौबे कालोनी का दशहरा उत्सव आकर्षक का केंद्र होते हैं।

धनतेरस – कार्तिक माह की तेरहवीं तिथि अर्थात् तेरस को धनतेरस का पर्व मनाया जाता है। मिट्टी के तेरह दीपक घर के मुख्य द्वार के सामने लगाए जाते हैं। चावल या गेहूं के आटे से चौक पूरने के परंपरा है। इस पर्व को धनवंतरि जयंती के रूप में भी मनाई जाती है। धनतेरस के दिन से दीपावली का पर्व भी प्रारंभ हो जाता है। अगले दिन यम चौदस या नरक चौदस का पर्व होता है। घर के बाहर दीप जलाए जाते हैं।

देवारी (दीपावली) – अत्यंत हर्षोल्लास के साथ दीपावली का त्योहार मनाया जाता है। अनेक किस्म के पकवान बनाए जाते हैं। छत्तीसगढ़ में अनरसा और पीडिया विशेष रूप से बनाया जाता है।

बस्तर में देवारी को दियारी त्यौहार के रुप में मनाया जाता है। दियारी तिहार बस्तर अंचल का प्रसिद्ध तिहार है। जिस तरह हम दिवाली के बाद गोवर्धन पूजा करते हैं उसी तरह बस्तर अंचल में पूष एवं माघ के महीने में कृषि कार्य से निवृत्त होने पर स्थानीय निवासी प्रत्यके ग्राम समूह में दियारी तिहार का उत्सव मनाते हैं। प्रत्येक गाँव में तिहार मनाने का दिन निश्चित होता है और निश्चित दिन ही मनाया जाता है।

इस तिहार में ग्राम वासी अपने निकट संबंधियों एवं मित्रों को निमंत्रित करते हैं और सबकी उपस्थिति

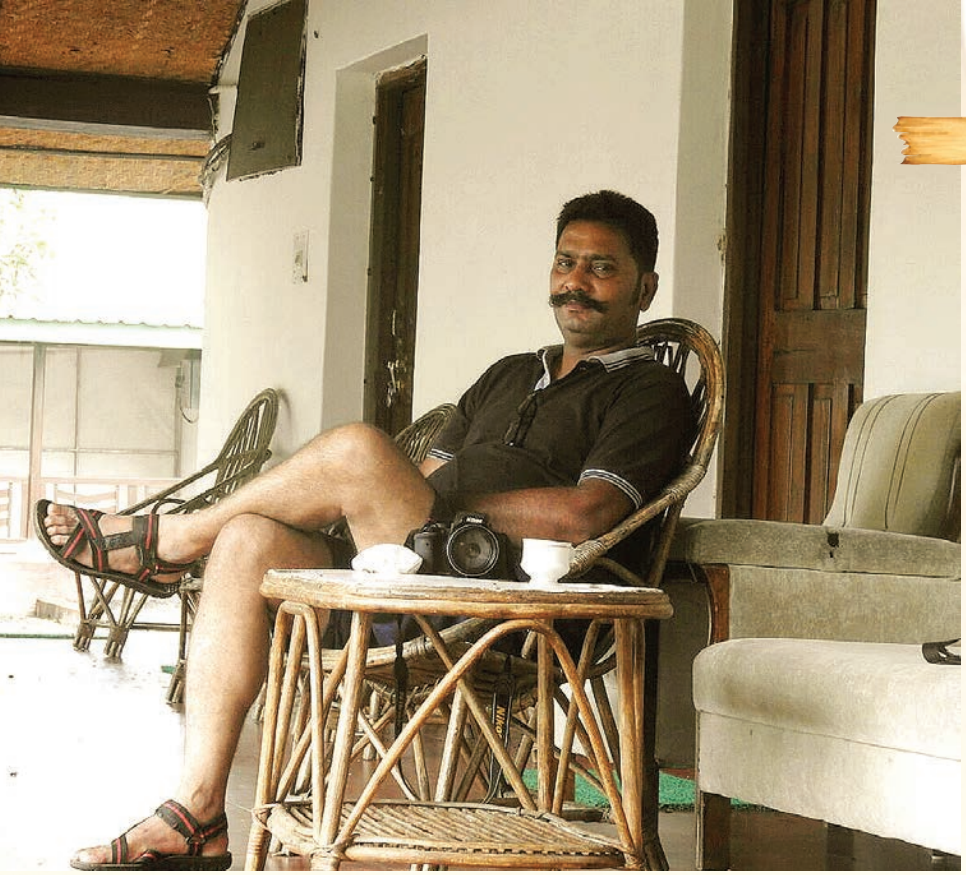

में उल्लासपूर्ण ढंग से पूजा पाठ कर दियारी उत्सव को मनाया जाता है। जिस दिन तिहार मनाना निश्चित होता है उसकी पूर्व रात्रि को चरवाहा (यहाँ पशु चराने का कार्य (गांदा) गाड़ा जाति करती है) ग्राम के प्रत्येक घर में जाकर पशुओं को "जेठा" (सोहाई) बांधता है। जेठा बांधने आए हुए चरवाहे का सम्मान द्वार पर आरती उतार कर किया जाता है।

इसके पश्चात अगले दिन सभी पशुओं को नहला कर पूजा की जाती है तथा विभिन्न तरह की सब्जियों एवं अनाज से तैयार खिचड़ी खिलाई जाती है। तत्पश्चात इस खिचड़ी को तिहार के प्रसाद के रुप में गृह स्वामी एवं परिजन ग्रहण करते हैं। चावल के आटे से घर की दुआरी में पद चिन्ह बनाए जाते हैं। जो लक्ष्मी के आगमन का सूचक होता है। इसके बाद गोवर्धन भाटा में गांव का बुजुर्ग एक बैल पर सिंगोठा (सिंगबांधा) बांध कर दौड़ाता है जिसे चरवाहे को पकड़ना होता है। अगर चरवाहा बैल को पकड़ लेता है तो उसे पुरस्कार दिया जाता है यदि चरवाहा बैल को नहीं पकड़ पाता तो उसे दंड दिया जाता है। मैदान में एक स्थान पर चरवाहे की पत्नी दीया जलाकर बैठती है, यहां पर ग्राम वासी उसे दक्षिणा स्वरुप अन्न-धन देते हैं।

गोवर्धन पूजा – लक्ष्मी पूजा के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा का पर्व मनाया जाता है। ग्राम के सभी लोग एक स्थान पर अपने पशुओं के साथ एकत्र होते हैं। उस स्थान को दैहान कहते हैं। वहां गोबर का प्रतीकात्मक पहाड़ बनाते हैं। इस आकृति को पशुओं के खुर से रौंदने की प्रथा है। यह पर्व पशुधन की समृद्धि की कामना का है। रायपुर के दूधाधारी मठ में गोवर्धन पूजा अन्नकूट के रूप में मनाई जाती है। मंदिरों में छप्पन किस्म के व्यंजनों का भोग लगाया जाता है। इस पर्व के प्रति यादवों का उत्साह देखते ही बनता है।

मातर – मातर गोवर्धन पूजा के दूसरे दिन मनाया जाता है। यादव समुदाय एक स्थान पर एकत्र होते हैं, जहां कुलदेवी, देवता की पूजा की जाती है। खीर का विशेष महत्व है। यादव पुरूष खास किस्म के वस्त्र धारण करते हैं। लाठी, ढाल आदि धारण किए यादव वीर वेश में सेनानी प्रतीत होते है। पशुओं की पूजा कर सोहई बांधने का क्रम शुरू होता है। मातर की संध्या से राउत-नाचा भी प्रारंभ होता है जो देव उठनी एकादशी तक चलता है।

भाई दुईज – पांच दिवसीय दिवाली का समापन भाई दूज से होता है। इसे यम द्वितीया के नाम से भी जाना जाता है। यह भाई एवं बहन के स्नेह का प्रतीक है। बहन, परिवार का महत्वपूर्ण अंग है, जिसके विवाह के पश्चात भी परिवार भूलता नहीं है तथा विशेष पर्वों पर उसके मान-दान का विशेष ध्यान रखा जाता है।

भाई दूज के दिन बहनें अपने भाई को तिलक लगाती हैं और उनकी लंबी उम्र की कामना करती हैं। इस त्योहार से भाई-बहन का संबध सुदृढ़ होता है। जहां बहन अपने भाई की लंबी उम्र की कामना करती है वहीं, भाई अपनी बहन के मान सम्मान की रक्षा करने का वचन देता है।

भाई दूज के साथ ही दिवाली का त्यौहार या पर्व सम्पन्न हो जाता है। इस दिन गणेश जी, यम, चित्रगुप्त और यमदूतों की पूजा की जाती है। कई घरों में कलम-दवात की पूजा भी की जाती है। इस दिन घर की बड़ी-बुजुर्ग महिलाओं से पारंपरिक कथाएं भी सुनी जाती हैं।

भाई दूज (भ्रातृ द्वितीया) का उत्सव एक स्वतंत्र उत्सव है, किंतु यह दिवाली के तीन दिनों में संभवतः इसीलिए मिला लिया गया कि इसमें बड़ी प्रसन्नता एवं आह्लाद का अवसर मिलता है जो दीवाली की घड़ियों को बढ़ा देता है। भाई दरिद्र हो सकता है, बहन अपने पति के घर में संपत्ति वाली हो सकती है, वर्षों से भेंट नहीं हो सकी है । इस दिन भाई-बहन एक-दूसरे से मिलते हैं, बचपन के सुख-दुख की याद करते हैं। इसलिए हमारे जीवन में भाई दूज महत्वपूर्ण स्थान है।

जेठउनी – कार्तिक माह की ग्यारहवीं तिथि के दिन देव उठनी एकादशी, जेठउनी या तुलसी विवाह का पर्व मनाया जाता है। छत्तीसगढ़ के लोकजीवन में भी तुलसी व्यापक रूप से समाहित है। छत्तीसगढ़ के प्रायः हर घर में तुलसी चौरा मिलता है। जहां नित्य दीपक जलाया जाता है। मरणासन्न व्यक्ति को गंगाजल के साथ तुलसीदल खिलाया जाता है। छत्तीसगढ़ में मितान बदने की परंपरा में तुलसीदल भी बदा जाता है। जब दो मितान तुलसी दल के बंधन में बंध जाते हैं तो परस्पर भेंट के समय सीताराम तुलसीदल कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। देवउठनी के दिन छत्तीसगढ़ में भी तुलसी और शालिग्राम पूजा की जाती है। तुलसी माता को वस्त्र और श्रृंगार सामग्री अर्पित की जाती है। चने की भाजी, तिवरा भाजी,अमरूद, कंदमूल और अन्य मौसमी फल सब्जी का भोग लगाया जाता है। गन्ना का इस दिन विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

गांवों में पशुधन को सोहाई बांधा जाता है। ग्राम्य देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। अहीर समुदाय की स्त्रियां किसानों के घर-घर जाकर तुलसी चौरा और धान की कोठी पर पारंपरिक चित्र बनाया करती है। जिसे हाथा देना कहते हैं। जब ग्वाले सोहाई बांधने के लिए आते हैं तब उसी हाथे पर गोबर को अपने मालिक(किसान) की मंगल कामना करते हुए असीस(आशीर्वाद) देकर थाप देते हैं।

उसके बाद इन ग्वालों को किसानों द्वारा सूपा में अन्न, द्रव्य और वस्त्रादि भेंट किया जाता है। इसको सुख धना कहा जाता है। प्रायः जेठौनी के दिन से ही अहीर समुदाय के लोग रंग बिरंगी वेशभूषा में राउत नृत्य करते हुए बाजे-गाजे के साथ मालिक जोहारने (भेंट) की शुरुआत करते हैं जो कार्तिक पूर्णिमा तक चलता है। कुछ क्षेत्रों में भिन्नता भी हो सकती है। जेठौनी तक किसानों के घर में धान की नई फसल आ जाती है इसलिए वे भी गदगद रहते हैं। जेठौनी के दिन बांस के बने पुराने टुकना चरिहा को जलाकर आग तापते हैं। माना जाता है कि पुराना टुकना जलाने से घर की सभी परेशानियों का अंत होता है और समृद्धि आती है। देवउठनी एकादशी के बाद सभी प्रकार के मांगलिक कार्यों की शुरुआत हो जाती है। विवाह योग्य लड़के लड़कियों के लिए जीवनसाथी तलाश करने का कार्य प्रारंभ हो जाता है, जो पहले पूरे माघ महीने भर तक चला करती थी और फागुन में विवाह होता था। देवउठनी एकादशी के दिन भगवान चौमासा के बाद जागते हैं, देव के जागने के पश्चात इसी दिन से हिन्दूओं में मांगलिक कार्य प्रारंभ होते हैं। ऐसा माना जाता है और प्रकृति में उमंग उत्साह का संचार होने लगता है जो स्थान-स्थान पर आयोजित होने वाले मेले मड़ाई में दिखाई देता है।

इस तरह छत्तीसगढ़ का चौमासा त्यौहारों की उमंग से ओतप्रोत होता है। इन चार महीनों में बहुत सारे त्यौहार मनाए जाते हैं, जिसका सीधा संबंध लोक एवं पौराणिक मान्यताओं से है। इन चार महीनों का कोई भी पखवाड़ा ऐसा नहीं है कि जिसमें कोई न कोई त्यौहार मनाया जाता न हो। यही त्यौहार सामाजिक समरसता को स्थापित कर लोक को एक सूत्र में बांधे रहते हैं।

ललित शर्मा
प्रधान संपादक न्यूज एक्सप्रेस

छत्तीसगढ़ की लोक परम्परा में धान्य संस्कृति

छत्तीसगढ़ भारत के हृदय भाग में पूर्व की ओर उत्तर से दक्षिण एक पट्टी के रूप में स्थित है। यह क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का नवाँ बड़ा राज्य है। जनसंख्या की दृष्टि से यह देश का सत्रहवाँ राज्य है। इसका कुल क्षेत्रफल 135,194 वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या 2,55,40,196 है।

छत्तीसगढ़ प्राचीन सोलह जनपदों के कोसल जनपद का दक्षिणी प्रदेश था इसलिए इसे दक्षिण कोसल के नाम से जाना जाता रहा है। ब्रिटिश काल में यह राज्य मध्यप्रांत और बरार का हिस्सा था। सन् 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के फलस्वरूप मध्यप्रदेश के रूप में अस्तित्व में आया। मध्यप्रदेश से विभक्त होकर इस प्रदेश ने 1 नवंबर 2000 को एक नवीन संरचना को प्राप्त किया है।

संपूर्ण छत्तीसगढ़ राज्य में पहाड़ों और जंगलों के बीच बड़े-बड़े मैदानी इलाकों में धान के खेत लहराते हैं, जो इसकी परंपराओं और विकास को पोषित करते हैं। समूचे क्षेत्र में धान की पैदावार के कारण यह धान के कटोरे के रूप विख्यात है। यहाँ की 85 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर अलंबित है।

छत्तीसगढ़ के 43.78 प्रतिशत क्षेत्र में कृषि कार्य होता है। धान प्रमुख फसल है, जो कि कुल खाद्यान्नों का लगभग 85 प्रतिशत क्षेत्र में बोया जाता है। छत्तीसगढ़ के आर्थिक विकास में धान की खेती का महत्वपूर्ण स्थान है।

यहाँ की मिट्टी धान की खेती के लिए उपयोगी है। डोरसा, कन्हार, मटासी मिट्टी जल अवशोषित करने में सक्षम होती है। संपूर्ण क्षेत्र में औसत वर्षा 1400 मि.मि. है। इसमें से 90 प्रतिशत वर्षा दक्षिणी मानसून से जून से लेकर सितंबर तक होती है। समतल भूमि, पर्याप्त जल स्रोत, सिंचाई की पर्याप्त सुविधा धान की खेती के लिए बेहद अनुकूल है।

कालांतर से ही धान छत्तीसगढ़ का प्रमुख खाद्यान्न रहा है। इसी कारण 'धान' यहाँ के लोकजीवन और परंपराओं में सर्वत्र व्याप्त है। धान न केवल प्रमुख भोज्य पदार्थ है बल्कि यह लोकजीवन का अभिन्न अंग है। यह जन्म से मृत्यु पर्यन्त लोक के साथ-साथ यात्रा करता है। प्रत्येक देश और उसके राज्यों की अलग-अलग परंपराएँ होती हैं जिससे उसकी एक पहचान बनती है।

प्रश्न उठता है कि परंपराएँ क्या हैं ? परंपराएँ कोई बनी बनाई वस्तु नहीं है, यह मनुष्य के हृदय और बुद्धि के निरंतर विकास और परिष्कार का गतिमान क्रम है। इसी विकासक्रम के अनुभवों से मानवीय मूल्यों का विकास होता है।

परंपराएँ किसी भी समाज देश के लिए वह निधि है जो उसकी बौद्धिकता का परिचय देती है। यह लोकजीवन का प्रमुख आधार होती है। किसी क्षेत्र की परंपराओं को जानना या समझना हो तो वहाँ के लोकजीवन का दर्शन करना होगा। परंपराओं को समझने के लिए लोकजीवन और लोकमानस को समझना अत्यावश्यक है।

परंपराएँ हृदय के आंतरिक पक्ष के अतिरिक्त बाह्य पक्ष का भी प्रदर्शन करती हैं। इसमें मनुष्य के मानवीय व्यवहार के साथ-साथ उसके रहन-सहन आदि की अंतरंग भूमिका भी प्रगट होती है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति, जंगल, जमीन और उससे जुड़े हुए उत्पाद परंपराओं का मूलाधार है। यहाँ की परंपराओं में विविधता को भी इसके सांस्कृतिक संदर्भ में देखा जा सकता है।

छत्तीसगढ़ की परंपराओं को सबल और सक्षम बनाए रखने के लिए पर्वों का प्रमुख स्थान है। पर्वों में यहाँ की संस्कृति झलकती है। इन पर्वों, उत्सवों व परंपराओं का सीधा संबंध यहाँ की प्रमुख फसल धान से है। ये पर्व देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग रूपों से आंचलिक संस्कृति के प्रभाव के साथ मनाए जाते हैं किंतु कुछ ऐसे स्थानीय पर्व हैं जो कि छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचल में ही मनाए जाते हैं।

ये सभी पर्व और परंपराएँ मानव मन में सांस्कृतिक चेतना का उल्लास भर देते हैं। जिस प्रकार हम नदी के प्रवाह को बाँध कर नहीं रख सकते उसी प्रकार परंपराओं को भी नहीं बाँधा जा सकता। परंपराएँ प्रवाह में चलने वाली चीज है जिसे किसी परिधि में बाँध कर नहीं रखा सकता। हाँ, किन्तु इसमें वातावरण का प्रभाव अवश्य दिखता है। युग का प्रभाव वातावरण में और वातावरण का प्रभाव 'लोक' में देखा जा सकता है जो कि लोक में प्रदर्शित होती हैं, वही परंपराओं का स्वरूप है।

छत्तीसगढ़ में भोजन और धान- जैसा कि छत्तीसगढ़ को 'धान का कटोरा' कहा गया है। सही में कहा जाय तो धान और धान से बने उत्पाद छत्तीसगढ़ियों के हृदय का स्पंदन है। यहाँ की लगभग सभी परंपराओं का धान से अन्तर्संबंध बना हुआ है।

यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन धान से संबंधित है। भात, धुसका, बासी, बोरे, पेज,अंगाकर, फरा, मुठिया और चीला का स्थान सबसे ऊपर है। ये सभी चावल से बनते हैं। इसके अतिरिक्त चौसेला, अरसा, गोटर्रा-भजिया आदि अनेक तरह के स्वादिष्ट व्यंजन चावल से बनाये जाते हैं।

जब धान की नई फसल आती है, तो लोग उसके चावल का विविध उपयोग करते हैं। छत्तीसगढ़ में बनने वाले चावल के पापड़ और मुरकू का स्वाद अपने आप में लाजवाब होता है। ऐसा कोई छत्तीसगढ़िया नहीं होगा जो इन विशिष्ट व्यंजनों से अपरिचित हो।

'बासी' छत्तीसगढ़ के मूलनिवासियों का प्रमुख भोजन है। यह भात का ही रूपांतरित स्वरूप है। रात में भोजन

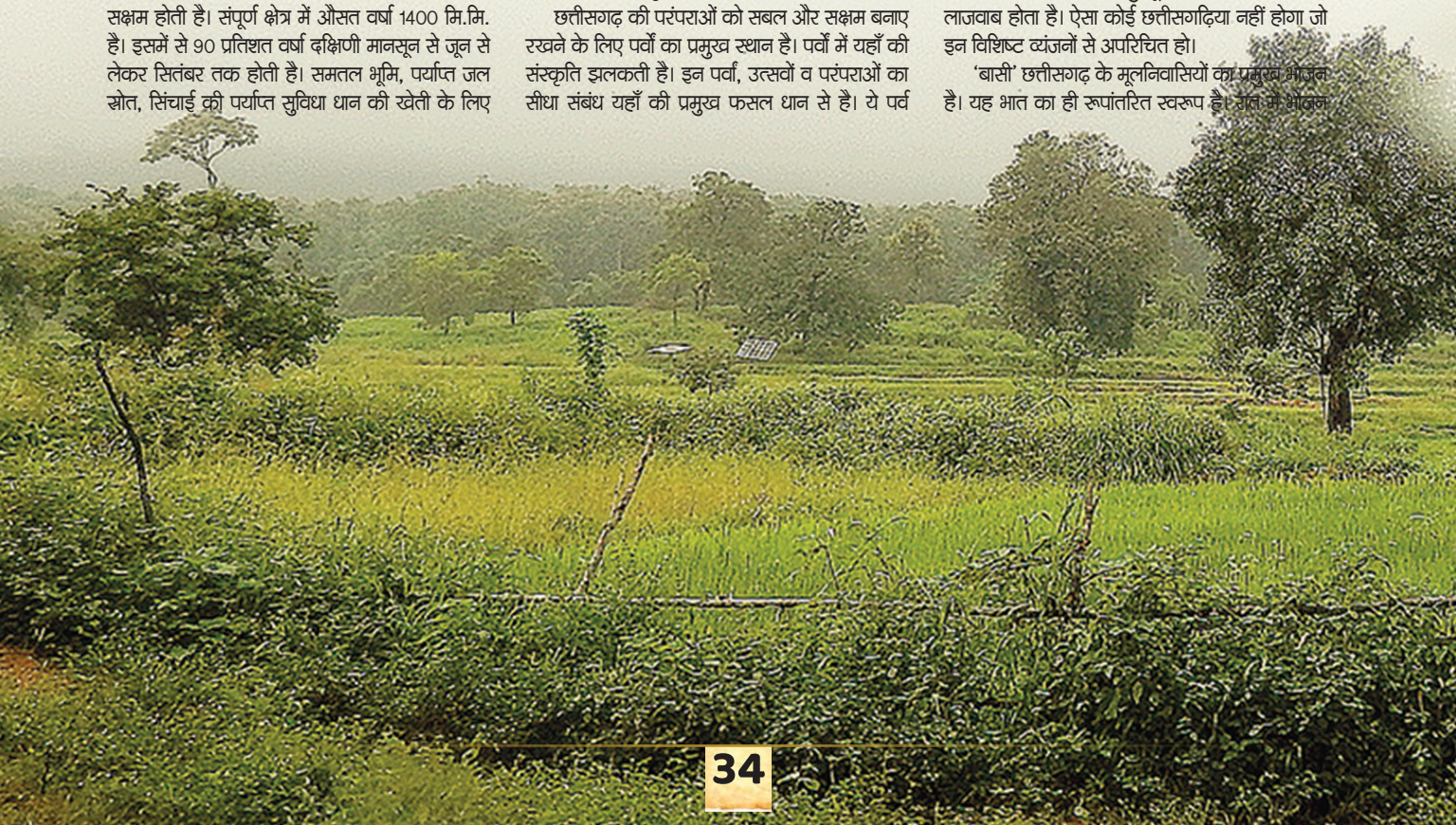

के बाद बच जाने पर पके भात को पानी में डुबा दिया जाता है। पूरी रात उसे डूबे रहने देते हैं, दूसरे दिन सुबह उसमें मठा (छाछ), दही मिलाकर या सब्जी के साथ खाया जाता है।

यह छत्तीसगढ़ के सामान्य लोगों का प्रमुख और महत्वपूर्ण भोजन है क्योंकि यह स्वास्थ्यवर्धक सिद्ध होता है। वर्तमान में चाय एवं अन्य अत्याधुनिक खाद्य पदार्थ आ जाने व शहरी प्रभाव के कारण यह छत्तीसगढ़ियों के भोजन से बाहर होते जा रहा है। ग्रामीण इलाकों में भी लोग अब बासी से दूर होते दिख रहे हैं। छत्तीसगढ़ियों को छप्पन भोग खिला दें, किन्तु भात न परोसा जाए तो उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती।

छत्तीसगढ के पर्व और धान-छत्तीसगढ़ में धान का संबंध भोजन, पकवान, पर्व, रीति-रिवाज आदि इन सब के अतिरिक्त कुछ ऐसे अन्य क्रियाकलापों में भी झलकता है, जो व्यावहारिक रूप में अनिवार्य दृष्टिगोचर होता है। इसका संबंध सीधे-सीधे हमारी परम्पराओं से होता हैं। वर्षा ऋतु के पदार्पण के साथ ही छत्तीसगढ़ अंचल में त्यौहारों की धूम मच जाती है। सावन में 'हरेली' पर्व मनाया जाता है।

छत्तीसगढ़ के लोकजीवन में पेड़ और प्रकृति की हरियाली की अपनी विशिष्ट भूमिका है। 'हरेली' छत्तीसगढ़ी मानस की बासंती परम्परा का मौन प्रतीक और साक्षी है उस सनातन सत्य का जिसका साक्षात्कार हमारे ऋषि-मुनियों ने किया है।

इस दिन किसान अपने कृषि औजारों (हल, बक्खर, कुदाल, रापा, चटवार, आदि) को धोकर लाता है और उसकी पूजा करता है क्योंकि वह जब धान की खेती करता है, तो अपने इन सभी औजारों से सहयोग लिया होता है। जिनके सहयोग से हम किसी कार्य को संपादित किए हों और उसके लिए हमारे मन में कृतज्ञता के भाव न हो, यह कैसे संभव है ? छत्तीसगढ़ की यह परंपरा कृतज्ञता के भाव की अभिव्यक्ति है।

पोला का पर्व मानवीय संवेदना का जीवन्त उदाहरण है। पोला के पर्व के आने तक धान की फसल गर्भ धारण किए हुए होते हैं जिसे आंचलिक भाषा में 'पोटरी' आना भी कहा जाता हैं। इस दिन को कृषक बड़े उल्लास के साथ मनाते हैं। ठेठरी, खुरमी, सोहारी,बड़ा जैसे अनेक सुंदर और स्वादिष्ट पकवान बनते हैं।

चावल का चीला भी बनाया जाता है। कृषक अपने घर में पूजा अर्चना कर थाली में पूजा की सामग्री और पकवान लेकर खेतों की ओर चल पड़ता है। उस पकवान में चावल का बना हुआ चीला अवष्य होता है। वह अपने प्रमुख खेत में जा कर पूजा अर्चना करता है। गर्भधारण किए हुए धान की फसल को व्यंजनों का भोग भी लगता है।

जैसे हम अपनी बेटियों को जब वह पहली बार गर्भधारण करती हैं तब उसे 'सधौरी' खिलाते हैं। इसी तरह कृषक धान को बेटी मानकर उसे सुंदर भोजन का भोग कराता है इसीलिए इस पर्व को 'गर्भही तिहार' के

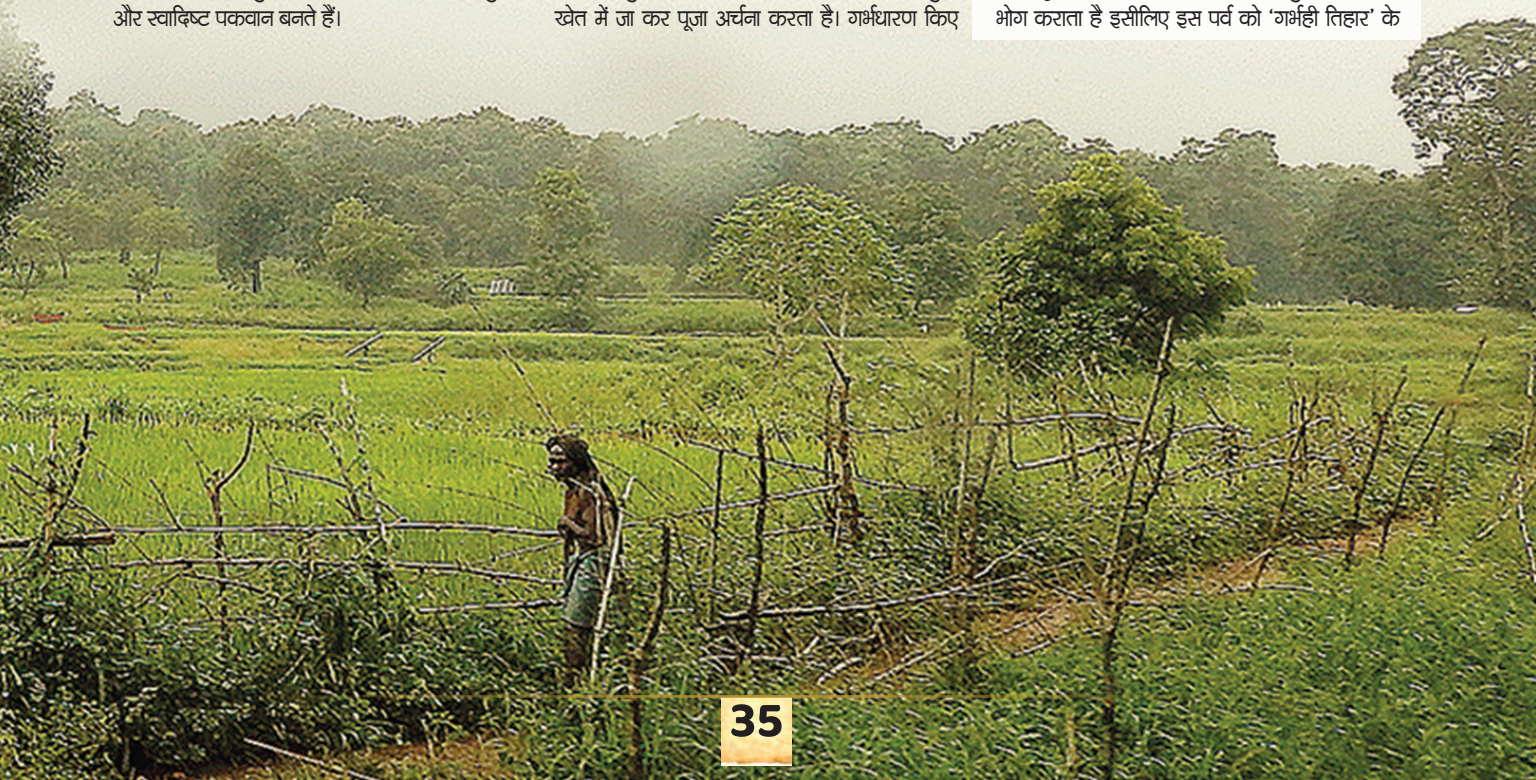

नाम से भी जाना जाता है। यह परंपरा कृषि संस्कृति का उच्चतम परिदृश्य प्रस्तुत करता है और छत्तीसगढ़िया 'मन' को विश्व पटल में अभिव्यक्त करता है।

छत्तीसगढ़ में तीजा का त्यौंहार बेटियों के संम्मान से जुड़ा हुआ पर्व है। इस दिन बेटियों को आदरपूर्वक लिवा कर लाया जाता है। बेटियाँ इस दिन का बेसब्री से इंतजार करतीं हैं। वे भाइयों की प्रतीक्षा करती हैं कि उनका भाई आए और उन्हें लिवा कर ले जाए। भाई का लिवाने के लिए आना उनके लिए एक सम्मान और संतोष का कारण बनता है।

बेटियाँ इस दिन (भादो मास के शुक्ल पक्ष के तृतीया) अपने पति के दीर्घायु होने की कामना के साथ उपवास करती हैं। वे उपवास की शुरूआत 'करूभात' खाकर करती हैं। 'करूभात' का अर्थ-'भात और करेले' की सब्जी से है। इस उपवास में अनिवार्य रूप से करूभात खाना होता है। इस प्रकार यह पर्व भी किसी न किसी रूप में धान से सरोकार रखता है।

खमरछठ पर्व का छत्तीसगढ़ की परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान है। खमरछठ को हलषष्ठी भी कहते हैं। यह त्यौहार भादो महीने के कृष्ण पक्ष की षष्ठी तिथि को मनाया जाता है। इस दिन माताओं के द्वारा बच्चों के दीर्घायु की कामना को लेकर व्रत रखा जाता है।

पुत्रवती माताएँ इस दिन जुते हुए खेतों के अन्न ग्रहण नहीं करतीं। इसके स्थान पर पड़ती भूमि में स्वतः उगे हुए धान से बने चावल का भोजन करती हैं। इसे 'पसहेर' कहा जाता है। पूजा की सामग्री में अन्य अनाज के साथ 'लाई' का महत्वपूर्ण स्थान है। लाई धान को परंपरागत ढ़ग से भूनकर बनाया जाता है। इस तरह छत्तीसगढ़ की समग्र परंपरा में धान का विषेष स्थान है।

छत्तीसगढ में नवाखाई का परंपराओं में विशेष स्थान है। नवाखाई का मतलब है-नये अन्न को भोजन के रूप में खाने की शुरूआत करना। भारतीय परंपरा में जब भी किसी चीज का हम उपभोग करते हैं, तो उसे देव आराधना के साथ करते हैं। नवाखाई को अलग-अलग समुदाय के लोग अलग-अलग दिवस में मनाते हैं।

बस्तर के आदिवासी समुदाय के लोग इस पर्व को भादो मास में मनाते हैं। धान की नई फसल आने की शुरूआत हो जाती है। नए धान के चावल से खीर बनती हैं। पूजा अर्चना के पश्चात नए चावल से बने खीर को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। बस्तर में ही सवर्ण समुदाय के लोग इस पर्व को राजा के साथ दशहरे के दिन मनाते हैं। इसी प्रकार मध्य छत्तीसगढ़ में इस पर्व को दशहरे के आसपास मनाया जाता है।

दीपावली भारतीय परंपरा का सबसे बड़ा पर्व है। इस पर्व को छत्तीसगढ़ में उत्सवपूर्वक ढ़ंग से मनाया जाता है। इस दिन लोक-व्यवहार और पूजा विधान में धान का उपयोग किया जाता है। दीपावली के दिन प्रतीकात्मक रूप में प्रत्येक घर में गोवर्धन पूजा की जाती है। गाय के गोबर से गोवर्धन बनाया जाता है।

गोवर्धन को सजाने के लिए मेमरी और सीलिहारी के साथ धान की बाली का उपयोग किया जाता है। कुछ लोग गाय के गले में धान के पौधों से रस्सी बनाकर बाँधते हैं। चावल के आटे से चौक पूरते हैं। गौरा-गौरी सजाने के लिए भी धान की सुनहरी बालियों का उपयोग करते है। लक्ष्मी-पूजन के समय सुंदर पके हुए धान की सुनहरी बालियों का झालर बनाकर उसकी पूजा की जाती है। बाद में इसे चिड़ियों के चुगने के लिए घर-आँगन में टाँग दिया जाता है।

छत्तीसगढ़ की परंपराएँ औपचारिकता मात्र नहीं है बल्कि इसमें भावों की प्रधानता और प्रकृति का पोषण भी है, जीव-जन्तु का संरक्षण भी। उत्कृष्ट विचारों से ओतप्रोत छत्तीसगढ़ की परंपराओं का कृषि और वन की संस्कृति से भी गहरा संबंध है। कृषि उपज में धान का लोकजीवन में सर्वत्र सरोकार है।

यादव समाज के लोग दीपावली के दिन प्रत्येक कृषक के घर गायों को 'सोहाई' बाँधने के लिए जाते हैं, तब उन्हें दान स्वरूप 'सूपा' में धान दिया जाता है। वह उसी धान में गाय का गोबर लोटाकर आशीष स्वरूप कोठी (अन्न भंडार) में थाप देता है।

'छेरछेरा' का पर्व दानशीलता के भाव को अभिव्यक्त करता है। जिस समाज में देने का भाव हो, वह कितना उदार समाज होगा। छेरछेरा का पर्व पूस पुन्नी के दिन मनाया जाता है। जब किसान संपन्नता से युक्त होता है। धान की फसल कट चुकी होती है। सभी की 'कोठी' धान से लबालब होती है। सभी के अंदर संपन्नता के भाव होते हैं।

इस दिन छोटे-बड़े सभी एक दूसरे के घर मांगने के लिए जाते है और लोग एक दूसरे को प्रसन्नता के साथ दान करते हैं। देने के लिए किसान परिवार में धान ही होता है। वे देकर अन्नदान करने के भाव से अभिभूत होते हैं। अन्नदान का द्रव्यों में अपना अलग स्थान है।

अक्ती अर्थात् पंरापरा में वर्ष का अन्तिम दिन और नए वर्ष की शुरूआत। परंपरानुसार छत्तीसगढ़ में इस दिन कृषि पर्व की नई शुरूआत होती है। इस दिन गाँव के लोग ठाकुर दाई में इक्टठा होते हैं। अपने घर से 'बीजहा' धान ले जाते हैं।

चाहे धान किसी भी प्रजाति का क्यों न हो, पूरे गाँव के लोगों के द्वारा लाए गए धान को एक साथ मिलाकर हैं और उसकी पूजा अर्चना करते हैं। पूजा के पश्चात गाँव के प्रमुख लोग सभी कृषक को एक-एक दोना धान देते हैं जिसे लोग देवकृपा से युक्त बीज मानकर अपनें खेतों में बोनी की शुरूआत करते हैं।

छत्तीसगढ के संस्कारों में धान-भारतीय परंपरा में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यान्त सोलह संस्कारों का उल्लेख है। ये संस्कार छत्तीसगढ़ की परंपरा में विद्यमान हैं। इन परंपराओं में जन्म, विवाह और मृत्यु विशेष उल्लेखनीय हैं। विवाह संस्कार में धान का कई संदर्भों में उपयोग किया जाता है।

ओली भरने, अंजुरी भरने के लिए चावल का उपयोग किया जाता है। साथ ही जब दूल्हे-दुल्हन को तेल हल्दी लगाया जाता है उस समय माँ या माँ के सदृश्य रिश्तेदारों के समक्ष बैठता है, उस समय पीढ़े के दोनों ओर थोड़ा-थोड़ा चावल रखकर बैठता है।

यही नहीं दूल्हा बारात के लिए प्रस्थान करता है तब वह अपने घर से 'भार' मारते हुए निकलता है। चावल से भार मारा जाता हैं। विवाह संस्कार के रस्मों में चावल या धान से बने 'लाई' का भी उपयोग किया जाता है। मृत्यु संस्कार में धान का महत्वपूर्ण स्थान है। जब अर्थी उठाई जाती है तब मृतक के ऊपर धान में सिक्कों को उसके ऊपर सींचते ले जाते हैं ।

पूजा पद्धति में धान-छत्तीसगढ़ की पूजा पद्धति में धान का उपयोग अनेक अवसर पर किया जाता है। चौक पूरने के लिए धान या चावल के आटे का उपयोग किया जाता है। कलश के ऊपर 'मलवे' में धान रखकर उसके ऊपर दीप प्रज्ज्वलित करने की परंपरा है।

पूजा में दान स्वरूप पुरोहित को धान देने की परंपरा है। दान देने की परंपरा में अन्नदान को विशेष स्थान है। छत्तीसगढ़ में अन्न का निकटतम अर्थ धान से है। अन्नदान कर आम छत्तीसगढ़िया संतोष और सुख का अनुभव करता है। ग्रामीण कामगारों को मजदूरी का भुगतान-छत्तीसगढ़ के गाँवों की अपनी अलग परांपरिक पहचान है। ग्रामीण सहयोगात्मक भाव से कार्य संपादित करते हैं। नाई, लुहार, धोबी, समुदाय, राऊत, बैगा, कोटवार आदि ग्रामीण कामगार के रूप में कार्य करते हैं।

समुदाय विशेष के लोगों को कार्य विशेष को संपादित करने दायित्व दिया जाता है और उन्हें मजदूरी में धान दिया जाता है। इसे 'जेवर' कहते है। 'जेवर' वार्षिक होता है। वर्षभर कार्य करने की मजदूरी का प्रतिफल स्वरूप दिया जाता है। यह वर्षो से परंपरा में है और आज भी यह प्रचलन में है।

विनिमय में धान- धान छत्तीसगढ़ का सबसे प्रमुख उत्पाद होने के कारण विनिमय का प्रमुख साधन रहा है। कालांतर में तो लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ एक दूसरे को देकर लेन-देन से करते रहें। बाद में वस्तु क्रय करने के लिए धान प्रमुख साधन बना।

धान देकर किसी वस्तु का क्रय-विक्रय किया जाना परंपरा में आ गया। गाँवों में सब्जी-भाजी तक खरीदने के लिए धान उपयोग करते थे किन्तु आज बाजारवाद के प्रभाव के कारण यह परंपरा विलुप्त-सा होता जा रहा है।

छत्तीसगढ़ की परंपरा का जब बारीकी से अध्ययन करते हैं तो ऐसा लगता है कि समूचा छत्तीसगढ़ धान में ही जीता है। धान यहाँ के लोगों के लिए सम्पन्नता का प्रतीक और जीवन का आधार है।

उपभोग में नहीं धान का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है। यहाँ के जनजीवन में धान को जीवनरेखा के रूप में देखा सकता है। परंपरा में जन्म से मृत्यु तक हर जगह धान की उपयोगिता दिखती है। आम छत्तीसगढ़ियों का जीवन धान से ही धन्य होता है।

बलदाऊ राम साहू
न्यू आदर्श नगर, पोटिया चौक, दुर्ग (छ.ग.)

बरहाझरिया के शैलाश्रय और शैलचित्र

कोरबा जिला 20°01 उत्तरी अक्षांश और 82°07 पूर्वी देशांतर पर बसा है। इसका गठन 25 मई 1998 को हुआ, उसके पहले यह बिलासपुर जिले का ही एक भाग था। यहाँ का क्षेत्रफल 712000 हेक्टेयर है। जिले में चैतुरगढ़ का किला, तुमान का शिव मंदिर और पाली का शिव मंदिर भारत सरकार द्वारा संरक्षित स्मारक है, तो राज्य सरकार द्वारा एकमात्र संरक्षित स्मारक कुदुरमाल की कबीरपंथी साधना एवं समाधि स्थल है। इसके अलावा भी जिले में पूरावैभव एवं प्राकृतिक सुंदरता से परिपूर्ण अनेक महत्वपूर्ण स्थल हैं जो पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता हैं।

सन् 2001 में जब देवपहरी स्थित आश्रम में बच्चों को निःशुल्क पढ़ाई कराने जाता था, उस समय आदिमानवों के अनेक शैलाश्रयों को देखा था। जिसमें कुछ में शैलचित्रों को भी देखा था पर उन सबको तब आदिवासियों की कलाकृति मानकर ध्यान नहीं देता था। जब राष्ट्रीय संगोष्ठियों में अन्य विद्वानों की शोध आलेखों को देखा और जाना तो अब नए सिरे से जिले के सदस्यों में चित्रों की खोज प्रारंभ की।

अधिकारिक रूप से 8 नवंबर 2012 को कोरबा जिले में पहली बार शैलचित्रों की खोज को प्रकाश में लाया। यह स्थान करतला विकासखंड अंतर्गत सुअरलोट का था। तब पर्यटकों की संख्या वहाँ बढ़ने लगी और कुछ लोग उनको खराब भी करने लगे। तब फिर नए खोज तो करता रहा पर प्रकाश में भी लाने डरता रहा। ऐसा ही एक शैलाश्रय है, जिसको पहली बार 2016 में स्थानीय पहाड़ी कोरवा केंदाराम जी के साथ खोज किया था।

जिले में और भी बहुत सारे शैलाश्रय हैं। पर यह शैलाश्रय कोरबा विकासखंड अंतर्गत ग्राम पंचायत लेमरू के आश्रित ग्राम छातीबहार जिसे हम गोल्हर के नाम से भी जानते हैं और छातीपाठ के नाम से भी। यहाँ पर अनेक शैलाश्रय हैं। जिनमें कुछ में शैलचित्र भी हैं। इन्हीं में से एक है शैलाश्रय है बरहाझरिया।

बरहाझरिया जिला मुख्यालय कोरबा से बाल्को लेमरू मार्ग पर 35 किलोमीटर दूर सड़क के बाईं ओर स्थित है, छातीबहार ग्राम में है। इसे गोल्हर के नाम से भी जाना जाता है। 22° 33'10उत्तरी अक्षांश, और 82° 48'55पूर्वी देशांतर पर 566.17 मीटर समुद्र से ऊंचाई पर यह ग्राम बसा है। यह पहाड़ी कोरवाओं की एक छोटी सी बस्ती है। यहाँ मानघोघर नदी एक नाले के रूप में बहती है, जिसे बरहाझरिया के नाम से जानते हैं।

झरिया ग्रामीण भाषा में पानी का एक स्रोत को कहा जाता है। यहाँ के शैलाश्रय में जंगली सूअर बहुतायत से निवास करते थे। जिसे स्थानीय भाषा में बरहा कहा जाता है। इस तरह इस नदी का इस जगह पर नाम बरहाझरिया पड़ गया। यहाँ के शैलाश्रय में जो शैलचित्र मिले हैं, उसे स्थानीय लोग इसे बरहाझरिया के नाम से जानते हैं। यह शलाश्रय बरहाझरिया के किनारे पर

स्थित है।

यहाँ कुछ शैलाश्रयों में आदिमानव निवास करते रहे होंगे, अत्यंत दुर्गम शैलाश्रय है। इनमें से एक शैलाश्रय में शैलचित्र है। जो 15215 फ़ीट माप का शैलाश्रय है। जिसमें शैलचित्र लगभग 3 फीट की ऊंचाई से प्रारंभ होकर 15 फीट तक की ऊंचाई पर बने हुए हैं। यहाँ लगभग 150 से अधिक शैलचित्र बने हुए हैं और भी शैलचित्रों की मिलने की संभावना है।

दुर्गम क्षेत्र घने वन जंगली जानवरों के विचरण क्षेत्र तथा अत्यधिक ऊँचाई पर गुफा निर्मित होने के कारण पहली बार खोज नवंबर 2016 में और दूसरी बार 14/ 12 /2019 को पुनः निरीक्षण के बाद भी संपूर्ण शैलचित्रों की खोज नहीं कर पाया हूँ। फिर भी जितने शैलचित्रों की प्राप्ति यहाँ पर कर पाया हूँ, उनमें 50 हाथ के पंजे जिसे स्टेंसिल तकनीक के सहारे से तात्कालिक आदिमानवों ने रंग को मुंह में भरकर फरकने की तकनीक का उपयोग कर बनाये होंगे।

ज्यामितीय प्रकार के 40, हिरणों की 20 और अन्य प्रकार की शैलचित्रों की संख्या 30 हैं। जब 2016 में यहाँ गया था तो यहाँ और भी शैलचित्र स्पष्ट दिखाई देते थे पर समय के साथ साथ उनमें कुछ शैलचित्र चटककर गिर गए हैं। ये सारे ही चित्र स्थानीय बलवे पत्थर से निर्मित प्राकृतिक स्थल पर निर्मित हैं। ये शैलचित्र लाल गेरवे रंग से बनाए गयें हैं।

यहाँ पर शैलचित्रों में ग्रास क्रापिंग (घास रोपण) के भी शैलचित्र बने हैं। जिससे पता चलता है कि इन चित्रों के निर्माण के समय में संभवतः आदिमानवों ने खेती की ओर कदम बढ़ाए होंगे और उनको हम प्रज्ञमानव भी कह सकते हैं। इस शैलाश्रय में कुछ जगहों पर कम गहरे गोल चित्र भी मानव निर्मित हैं। जिन पर प्रज्ञमानव (आदिमानवों) के द्वारा अनाज कूटने का भी काम किया जाता रहा होगा।

आधुनिक युग में भी आदिवासी और वनवासी महिलाएँ मुसल की सहायता से वनाँचल में धान (अनाज) कुटने का काम करती हैं। यहाँ पर बहुत अच्छे ज्यामितीय

शैलचित्र भी बने हैं जो कोरबा के दूसरे शैलाश्रयों में निर्मित शैलचित्रों में भी हैं ।

यहाँ के शैलचित्र दुनिया भर के प्रागैतिहासिक कालीन शैलचित्रों से आश्चर्यजनक रूप से समानताएँ रखते हैं। चित्रों की बनावट और शैली के आधार पर यहाँ के शैलचित्र प्रागैतिहासिक काल के प्रतीत होते हैं। जो महापाषाण काल से लेकर नवपाषाण काल तक के हो सकते हैं।

आदिमानवों ने उबड़-खाबड़ चट्टानों की दीवार को ही अपना कैनवास बनाकर अपने अंतर्मन को व्यक्त किया। लाल रंग और ज्यामितीय चित्रों की रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के शैलाश्रय में निवास करने वाले आदिमानव जिसे हम प्रज्ञमानव भी कह सकते हैं। वे इस स्थल पर प्रसन्नता से सुरक्षित रहते हुए दीर्घ अवधि तक खुशहाली से जीवन व्यतीत करते रहे होंगे।

जहाँ न तो शिकार की ही कमी थी और न ही भोजन के लिए अनाज और कंदमूलों की ही। विद्वानों का अभिमत है कि यहाँ के शैलचित्र 30-40 हजार वर्ष से अधिक प्राचीन भी हो सकते हैं तो ऐतिहासिक काल के भी। जिसकी वैज्ञानिक पद्धति से जांच कराकर ही वास्तविक तिथि पता लगाई जा सकती है।

निष्कर्ष :- प्रागैतिहासिक कालीन इन चित्रों की बनावट आश्चर्य रूप से दुनिया भर में बनी गुफा चित्रकला और शैलचित्रों से समानताएँ रखती हैं। चाहे वह 30000 वर्ष पुरानी स्पेन की अल्टामीरा गुफा हो या उत्तरी ऑस्ट्रेलिया की गुफा, छत्तीसगढ़ के सिंघनगढ़ के शैलचित्र हो या जशपुर के शैलचित्र हों।

मध्यप्रदेश के होशंगाबाद की गुफाओं के चित्र हो चाहे कश्मीर की गुफाओं में बने पंजे की शैलचित्र हों। इन चित्रों में एकरूपता दिखाई देती है। इनमें जानवरों के तो चित्र स्पष्ट है ही। प्रागैतिहासिक काल के आदिमानव इन प्राकृतिक शैलाश्रयों का उपयोग अस्थाई रूप से आवास के लिए करते थे तथा अपने दैनिक सांस्कृतिक जीवन की कलात्मक प्रस्तुति इन शैलाश्रयों पर चित्रों के रूप में करते थे। जिससे उस काल की संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है।

हरिसिंह क्षत्री
मार्गदर्शक – जिला पुरातत्व संग्रहालय कोरबा, छत्तीसगढ़

जोंक नदी घाटी की सभ्यता एवं जलमार्गी व्यापार

प्राचीनकाल से मानव ने सभ्यता एवं संस्कृति का विकास नदियों की घाटियों में किया तथा यहीं से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। नदी घाटियों में प्राचीन मानव के बसाहट के प्रमाण मिलते हैं। कालांतर में नदियों के तटवर्ती क्षेत्र आवागमन की दृष्टि से सुविधाजनक एवं व्यापार के केंद्र बने। प्राचीन मार्गो के संबंध में महाभारत पुराणों एवं प्राचीन ग्रंथों के साथ ही साथ अथर्ववेद में इसका बहुत ही सुंदर वर्णन किया गया है।

ये ते पन्थनो बहवो जनायन रथस्य वत्मानसश्च यातवे।
यै संचरन्त्युभये भद्रपापास्तम पंथानम
जयेमानमित्रमतस्क्रम, यचिछवम तेन नो मृड।।

देवशरण अग्रवाल ने उक्त मंत्र में सानिध्य तथ्यों की ओर आकर्षित करते हुए व्याख्या की कि इस भूमि पर पंथ या मार्ग की अनेक संख्या है जो मानव यातायात के प्रमुख साधन हैं, इसमें रथ के लिए रास्ते हैं, माल ढोने वालों के आवागमन के लिए भी प्रमुख साधन है।

इस प्रकार इस क्षेत्र में मिस्टर चिसम ने भी जोंक नदी के तट पर चारों दिशाओं में जाने वाले मार्गों को उचित ठहराया है, जोंक नदी की घाटी में हम देखते हैं कि यहां मानव की सभ्यता किस प्रकार विकसित हुई है? यदि हम जोक घाटी की बात करें तो उद्गम स्थल मारागुड़ा के बाद यदि कहीं दिखाई देती है, तो मारागुड़ा प्राचीन नगर इस बात के संकेत देता है कि यहां व्यापार होता था।

मारागुड़ा के नीचे त्रिशूल टीला, पतोरा उसके बाद पताल घुटकुरी। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ में परकोम स्थित निषध दहरा के पास नवकापट्टनम काफी स्पष्ट देखने को मिलता हैं। जैसे-जैसे जोंक नदी आगे बढ़ती है, नर्रा (छ ग) और कुररूमुड़ा उड़ीसा ओर दोनों ही पार में नवकापट्टनम को स्थानीय प्रचलित भाषा में इसे डोंगिया कहते हैं।

ब्रिट्रिश काल तक बाजार के बारे में भी यहां जानकारी मिलती है। एक बड़ा बाजार यहां 3 दिनों तक लगता था इसके आगे बढ़े तो रेलवे पुल के पास टेमरी में नौकापत्तनम मिलता है जो अब खेतों में तब्दील हो चुका है। जोक नदी जैसे जैसे आगे बढ़ती है साल्हे भाटा खेमड़ा जहां एक विशाल आदमकद गणेश जी की प्रतिमा एवं पंचायतन शैली की मूर्तियां, टेराकोटा के अवशेष इस बात को प्रमाणित करते है कि यह एक समृद्ध नगर व व्यापारिक केंद्र रहा होगा।

व्यापार के सभी साधनों में उपयोग में आने वाले मृदा निर्मित मापन पात्र और औषधि निर्माण में प्रयोग की जाने वाले पात्र सेनभाठा से प्राप्त हुए है। खुड़मुड़ी और आगे उदरलामी, परसवानी, संकरा, सपोस, रायपुर जिले में छतवन नागेड़ी, राजा देवरी, सोनाखान, हसुआ, कटगी में सरार है। जिसे स्थानीय भाषा मे डोंगिया कहते हैं तथा नवकापट्टनम भी कह सकते हैं।

इन स्थानों पर रखे पत्थर एवम घाट यदा-कदा दिखाई देते हैं। जोक नदी के तट पर बड़े पैमाने पर व्यापार में वनोंपज एवं यहां खाद्यान्न की आपूर्ति होती रही होगी। महानदी के तट पर बड़े बाजार होने के पर्याप्त साक्ष्य मिले हैं। जैसे कि सिरपुर में एशिया का सबसे बड़ा बाजार होने का संकेत पुराविद डॉ ए के शर्मा ने अपने उत्खनन से दिया।

यहाँ उत्खनन से प्राप्त विशाल आधुनिक बाजार, मुद्रा व्यापार हेतु अनुमति पत्र में लगने वाले सील मुद्रा, औषधालय खाद्यान्न तैयार करने वाले उपस्कर प्राप्त हुए हैं, प्राप्त सिक्के एवम मनके अरब एवं पर्सिया से होने वाले व्यापार व व्यापारियों की पुष्टि करते हैं।

इसी प्रकार रीवा उत्खनन डॉ पुरुषोत्तम साहू द्वारा प्राप्त अवशेषों में कुषाण कालीन सिक्के और अरेबियन मनके महानदी घाटी में समृद्ध व्यापार को इंगित करते है। तरीघाट, सिरकट्टी स्थित विशाल नवकापट्टनम इस बात के संकेत देते हैं कि देशी ही नहीं अपितु विदेशों से भी व्यापार के लिए यहां व्यापारी पहुंचते थे और अपना व्यापार करते थे। इस प्रकार जोंक घाटी की सभ्यता व्यापार के दृष्टिकोण से काफी सफल रही है और क्षेत्र में व्यापार की व्यापक संभावनाएं का विश्लेषण किया जा सकता है। नलवंशी शासनकाल के प्राचीन अवशेष त्रिशूल टीला पर प्राप्त होते हैं। नदी के तट पर प्राप्त पाषाण मूर्तियां इस बात को संकेत देती हैं कि यहां पत्थर बाहर से लाए गए एवं उनकी मूर्ति यहां स्थापित की गई।

दूसरा पहलू यह भी है कि किसी शासक ने राज्य विस्तार एवं प्रशासनिक मजबूती जोंक घाटी के माध्यम से की। परिणामतः इन स्थानों पर मन्दिर, मूर्तियां स्थापित कर अपने राज्य और राजस्व को बढ़ावा देने का प्रयास किया होगा जिसमें व्यापारियों की अहम भूमिका आवश्यम्भवी रही होगी। शरभपुरीय शासन काल मे मारागुड़ा घाटी की सभ्यता पूर्णतः विकसित थी। इसका उल्लेख जीतमित्र प्रसाद सिंहदेव ने अपनी पुस्तक दक्षिण कोसल का सांस्कृतिक इतिहास में दिया है। प्रो एस आर नेम, एल पी पांडेय एवं प्रो मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित ने शरभपुरीय शासको के अस्तित्व को इंगित किया है।

मारा गुड़ा घाटी में रयताल बांध और उसके आसपास विस्तृत भूभाग में बिखरे पुरावशेषों एवं उत्खनित पुरातत्व सामग्री, मुद्रा आदि इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। इनके शासन में जल मार्ग एवं जल व्यापार का यहां के बहुसंख्यक जनजातियों पर प्रभाव रहा। इनका समृद्धशाली इतिहास रहा है। मारागुड़ा घाटी के पतन के पश्चात शरभपुरीय शासको ने अपनी राजधानी सिरपुर को बनाया।

शरभपुरीय शासक शनैः शनैः शक्तिशाली हो कर राज्य विस्तार करने के लिए महानदी के मैदानी भाग में अपने वर्चस्व को बढ़ाने के उद्देश्य से सिरपुर को अपनी राजधानी के रूप में चुना। इनके कार्य काल का वैभव सिरपुर से प्राप्त पुरावशेष, उत्खनन से प्राप्त अब तक का सबसे बड़ा बाजार व्यवस्था इस बात के धोतक है कि महानदी और उनकी सहायक नदीयों मे व्यापार हेतु बाजार की व्यवस्था होती थी । जोंक नदी का सर्वेक्षण करने वाले प्रो एन के साहू सम्बलपुर विश्वविद्यालय, डॉ एल एस निगम ने दक्षिण कोसल का ऐतिहासिक भूगोल में जोंक नदी के व्यापार का उल्लेख किया है। इसी प्रकार डेक्कन कॉलेज के शोधर्थियों का शोध तथा डॉ एस के बाजपेयी एवं डॉ ए के प्रधान ने सर्वेक्षण किया।

जोंक नदी घाटी में 40 स्थानों पर पाषाण के पूर्व पाषाण कालीन औजार, पुरावशेष प्राप्त होने की विस्तृत रिपोर्ट कोसल-9 संस्कृति विभाग छ ग में प्रकाशित है। जोंक नदी तट पर प्राचीनकालीन नवकापट्टनम स्थानीय भाषा मे डोंगिया प्राप्त हुए हैं। इसके साथ ही तट पर की बसाहट में नगर संरचना की उत्कृष्ट शैली में पाषाण प्रतिमाएं इस बात के धोतक हैं कि जोंक घाटी कभी व्यापार की दृष्टि से समृद्ध थी।

डॉ विजय कुमार शर्मा
कोमाखान, जिला महासमुंद

मिट्टी की गुणवत्ता एवं जैव विविधता का संरक्षण आवश्यक

हमारी धरती धन-धान्य से सदैव भरी रहे अक्षय रहे अक्षय तृतीया का पर्व इन्हीं महत्व को उजागर करता है। छत्तीसगढ़ में अक्ती त्यौहार के साथ खेती किसानी की शुरुआत होती है। किसान अच्छी फसल के लिए धरती माता, बैल, खेती-बाड़ी के औजार और बीजों की पूजा अर्चना कर आशीर्वाद लेते हैं। अक्षय तृतीया के दिन स्वयंसिद्ध मुहूर्त होता है इस कारण सारे कार्यों की शुरुआत होती है। शादी विवाह का विशेष मुहूर्त होता है।

धरती माता की रक्षा की शपथ लेकर जैविक खेती को बढ़ाना बढ़ावा देना ताकि मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनी रहे। मिट्टी को पुनर्जीवन देने के लिए वर्मी कंपोस्ट, गोमूत्र आदि का उपयोग कर जैविक खेती को बढ़ावा देना देने की शुरुआत की गई है। रासायनिक खाद, कीटनाशकों से विषाक्त होती धरती और उस पर उपजने वाली फसलें विषाक्त हो रही हैं। हमारा भोजन जहर भरा हो चला है जो अनेक रोगों का जिम्मेदार है। मानव जीवन को सुखमय बनाने की पर्यावरणीय पहल की शुरुआत छत्तीसगढ़ में अक्ती त्यौहार से प्रारंभ होती है। पंचमहाभूत में से एक जो हमें भोजन प्रदान करती है। जहरीले रसायनों, कीटनाशकों के अंधाधुंध इस्तेमाल से जमीन बंजर हो रही है। ऐसी जमीन पर उगने वाली फसलें भी विषाक्त हो रही है। समूचा पर्यावरण, पंचमहाभूत भी ऐसी विषाक्तता से अछूते नहीं हैं। पूरी दुनिया मिट्टी में व्याप्त विषाक्तता के खतरे से जूझ रही है।

मिट्टी को पूजने की हमारी प्राचीन परम्परा रही है। विश्व पर्यावरण दिवस पर मिट्टी को पुनर्जीवन देने का आव्हान किया गया है ताकि आमजन मिट्टी की अहमियत जाने, विषाक्त होती मिट्टी को बचाने की पहल करें। धरती माता की पूजा अर्चना करते हुए जब हम मिट्टी को पुनर्जीवन देते हुए जैविक खेती किसानी को अपनाने की ओर क़दम रखेंगे तो हर और सुख समृद्धि का वातावरण बनेगा।

धरती ही अक्षय है जो हमें माता जैसा स्नेह अपनी फसलों से देती है। पांडव वनवास काल के दौरान भूखे थे, ऐसे समय में दुर्वासा ऋषि अपने संतों के साथ भोजन के लिए जा पहुंचे थे। भोजन संकट से उबरने के लिए युधिष्ठिर ने भगवान सूर्य से प्रार्थना की, जिन्होंने अक्षय पात्र दिया कि सभी अतिथि के लिए भोजन उपलब्ध होगा। श्री कृष्ण ने इस पात्र को द्रौपदी के लिए अक्षय बना दिया जो जगत को तृप्त कर सके। प्रकारान्तर से धरती माता ही अक्षय है जो युगों युगों से संपूर्ण जगत को भोजन प्रदान कर रही है। हमारा पोषण करती धरती की रक्षा हम करें ताकि वह हमारा और हमारी पीढ़ियों का सतत् पोषण करती रहे।

जंतु, पशु -पक्षी का अपना एक विशेष महत्व है और वे सभी एक दूसरे पर अवलंबित हैं। प्राकृतिक संसाधन सहित मरुस्थल और हिम आच्छादित पर्वत शिखर, नदियां आदि सब कुछ मानव जीवन के लिए जरूरी है। जीवन की गुत्थियां एक दूसरे पर आश्रित है। किसी एक जीव के खत्म हो जाने के खतरे को आज के वैज्ञानिक समझने लगे हैं। यही कारण है कि धरती के कोने कोने में जैव विविधता संपदा को सहेजा, संवारा जाने लगा है।

पृथ्वी पर 5 से 30 मिलियन प्रजातियां होने का अनुमान वैज्ञानिक लगाते हैं। अभी तक 1.5 मिलियन प्रजातियों को ही पहचाना जा सका है। बढ़ता प्रदूषण बढ़ती आबादी और अंधाधुंध विकास से होते विनाश से जैव संपदा को अत्यधिक क्षति पहुंच रही है। दुनिया की ज्यादातर प्रजातियां को हम जान नहीं सके हैं उनके विलुप्त होने का खतरा ज्यादा हो गया है। प्राकृतिक रूप से भी प्रजातियां भी विलुप्त हो रही है। इंसानी हस्तक्षेप के कारण विलुप्तिकरण की दर एक हज़ार से दस हजार गुना ज्यादा हो रही है। प्रजातियों को बचाये रखने के लिए दुनिया में अब बायोस्फीयर रिजर्व स्थापित किए जा रहे हैं। धरती पर मौजूद पेड़- पौधे और जीव-जंतुओं के बीच संतुलन बनाए रखने तथा जैव विविधता के मुद्दों के बारे में लोगों में जागरूकता और समझ बढ़ाने के लिए हर बरस 22 मई को अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस मनाया जाता है। 22 मई 1992 को नैरोबी एक्ट में जैव विविधता को 193 देशों ने स्वीकार किया और इस दिन को जैव विविधता दिवस घोषित किया। भारतीय संस्कृति में जैव विविधता को बचाए रखने के लिए धार्मिक रूप से विधान बनाए गए हैं। वेद सहि दूसरे धार्मिक ग्रंथों में पेड़ -पौधे, नदी -पहाड़, कुआं- तालाब, पशु -पक्षी, सभी के संरक्षण और संवर्धन के लिए विधान बनाए गए हैं। भारतीय पर्व और त्योहारों में, रीति रिवाजों में प्रकृति को सहेजा गया है। संपूर्ण भूमंडल को एक कुटुंब की संज्ञा दी गई है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति समूची दुनिया से अनूठी है और विश्व को एक समृद्ध दृष्टिकोण भी प्रदान कराती है।

हमारी जैव विविधता संपदा तेजी से खत्म हो रही है जिन्हें बचाए रखने के लिए वर्ष 2011-2020 के दशक को यू एन जी ए द्वारा संयुक्त राष्ट्र के जैव विविधता दशक घोषित किया था। ताकि जैव विविधता पर एक राजनीतिक योजना के कार्यान्वयन को बढ़ावा दिया जा सके। प्रकृति के साथ सद्भाव से रहने की समग्र दृष्टि को बढ़ावा दिया जा सके।

जैव विविधता के नजरिए से भारत एक समृद्ध देश है। विश्व का 2.4 फीसदी भूभाग होने के बावजूद यहां दुनिया की 7-8 प्रतिशत प्रजातियों का पर्यावास है। इन प्रजातियों में 45000 पादप और 91000 जीव- जंतु हैं। दुनिया के 34 जैव विविधता हॉटस्पॉट में से चार भारत में हैं। भारत में जैव विविधता के कई आकर्षक वैश्विक केंद्र हैं।

भारत दुनिया के लिए कई मायनों में उदाहरण माना जा सकता है। जो देश एक अरब 30 करोड़ लोगों की आबादी को स्थाई रूप से भोजन उपलब्ध कराता है यह एक मिसाल है! चुनौतियां भी है कि भूमि, मिट्टी और जल संसाधनों और देश की समृद्ध विविधता को नष्ट किए बिना, शहरों में प्रदूषण की धुंध पैदा किए बिना किस तरह उपलब्धि बरकरार रखी जा सकती है! भारत के राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की मदद से ग्रामीणों की आजीविका में बेहतरी के लिए नए मापदंड स्थापित किए हैं। भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत को समेटे हुए एक बेहतर भविष्य का निर्माण कर रहा है जैव विविधता को संजो कर उसे कैसे जीवन्त बनाए रखना है यह भारत की संस्कृति में विद्यमान हैं उसका अनुसरण करते हुए सब का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

रविन्द्र गिन्नौरे
भाटापारा, छत्तीसगढ़

गौवंश का गुरुकुल : दईहान

छत्तीसगढ़ में गौ-पालन की समृद्ध परंपरा रही है। पहले गांवों में प्रायः हर घर में गाय रखी जाती थी और घर में अनिवार्यतः कोठा(गौशाला)भी हुआ करती थी। अब घर से गौशाला गायब है और गौशाला के स्थान पर गाड़ी रखने का शेड बना मिलता है; जहां गाय की जगह मोटरसाइकिल या कार खड़ी होती है।

गांवों में पशुओं को चराने के लिए बरदिहा (चरवाहा या ग्वाला) रखा जाता है। गांव वाले उनको सालभर के लिए इस कार्य के लिए नियुक्त करते हैं और पशुओं की संख्या के आधार पर मेहनताना अनाज के रूप में देते है। छत्तीसगढ़ धान का कटोरा कहा जाता है तो पहले भी उनको धान दिया जाता था और आज भी धान ही दिया जाता है।

गांवों में पशु चराने का कार्य प्रायः यदुवंशी ही करते हैं। जो बड़े सवेरे हांक पारकर (उंची आवाज लगाकर) पशुओं को चराने के लिए गौशाला से खोलने का संदेश देते हैं। फिर गली से गौठान तक पशुओं को पहुंचाने का क्रम चल पड़ता है। कुछ अनूठे नियम भी देखने को मिलता है गांवों में जैसे गांवों में दूध दूहने के लिए लगे चरवाहे (ग्वाले) को हर तीन या चार दिन के बाद पूरा दूध ले जाने का अधिकार होता है। इसे बरवाही कहा जाता है।

सामान्यतः गाय का बरवाही हर तीन बाद और भैंस का बरवाही चौथे दिवस होता है। बरवाही के दिन के दूध को बरदिहा स्वयं उपयोग करने या पशु मालिक या अन्य किसी को बेचने के लिए स्वतंत्र होता है। प्रातःकाल पहट में जब बरदिहा (चरवाहा) गले में नोई (गाय के पूंछ के बाल से बनी रस्सी) को लटकाकर गली में निकलता है तो उसका ठाठ ही अलग होता है। भोर (पहट) से ही उसका कार्य आरंभ हो जाता है, इसलिए बरदिहा को पहटिया भी कहा जाता है। छत्तीसगढ़ के लोकप्रिय कवि मीर अली मीर ने पहटिया का बड़ा सुंदर चित्रण अपनी कविता में किया है-

होत बिहनिया पथरा के आगी
टेडगा हे चोंगी,टेडगा हे पागी
नोई धरे जस, गर कस माला
नोई धरे जस, गर कस माला

तो ऐसी सुंदर परंपरा छत्तीसगढ़ के गांवों में पहले भी रही है और आज भी जारी है। ये तो हुई छोटे किसानों और उनके पशुधन की बात ! ! लेकिन, गांवों में कुछ बड़े किसान जिन्हें गांवों में सामान्यतः दाऊ या गउंटिया की संज्ञा दी जाती है। उनके पास पशुधन कुछ ज्यादा ही संख्या में हुआ करता था जिनको गांव के चरवाहे गांव के अन्य पशुओं के साथ चराने में असमर्थ होते थे क्यूंकि गांवों के आसपास मैदानी इलाकों में पर्याप्त चारागाह नहीं होते थे।तब मैदानी

इलाके के ऐसे बड़े किसान या दाऊ अपना अलग चरवाहा लगाकर अपने पशुओं को जंगली क्षेत्रों में चराने के लिए भेज देते थे। जहां उनके द्वारा नियुक्त चरवाहा सालभर तक पशुओं की देखभाल किया करता था।

इन लोगों को उनका मेहनताना अनाज के रूप में मिलता था। बरसात के पूर्व आषाढ़ के महीने से जंगली या पहाड़ी क्षेत्रों में अस्थायी निवास बनाकर ये चरवाहे पशु चारण का कार्य करते थे। अमूमन दईहान बसाहट के आसपास ही रखी जाती थी ताकि दैनिक जरूरतों की सामग्री मिल सके और किसी विपरीत परिस्थिति में सहायता मिल सके। लेकिन ये बस्ती के एकदम आसपास नहीं होते थे। साथ ही इनका निवास बदलते रहता था ताकि पशुओं को चारा मिलता रहे। इस प्रकार के पशु चारण और देखभाल की प्रक्रिया को दईहान कहा जाता था। इस दौरान पशुओं से प्राप्त उत्पाद का मालिक वह स्वयं होता था जबकि पशु मालिक को प्रति पशुसंख्या के आधार पर एक काठा घी सालाना देने की परंपरा थी। ये उस दौर की बातें हैं जब आवागमन और रोशनी के साधन नहीं होते थे। मनोरंजन के लिए भगवान कृष्ण की सहचरी रही बांसुरी का ही सहारा होता था।अगर दईहान चराने वाले समूह में से कोई बांस(एक प्रकार बांसुरी जैसा लंबा वाद्ययंत्र) बजा लेता तो लोककथा के साथ बांसगीत गाकर अपना मनोरंजन कर लेते थे। कुल जमा दईहान का मतलब होता था न्यूनतम आवश्यकता के साथ जीना। भरण पोषण की जिम्मेदारी से लदा व्यक्ति कहीं पर भी जीवन यापन के लिए बाध्य होता है। दईहान में रहना जोखिम भरा और कष्टकारी कार्य होता था। जंगल में खूंखार वन्य प्राणियों के बीच रहकर स्वयं और अपने पशुधन की सुरक्षा मामूली काम नहीं था। तेंदू की लाठी, टंगिया, हंसिया और मशाल ही उनके सुरक्षा के हथियार थे। मिट्टी तेल की ढिबरी का ऊजाला और अंगेठा (अलाव) का ही सहारा होता था।जंगल में प्राप्त उत्पाद का कोई क्रेता भी नहीं होता था इसलिए दईहान में रहने वाले व्यक्ति के परिजन या दईहान का कोई व्यक्ति ही हफ्ते या पंद्रह दिनों के अंतर में दही और घी को लेकर आता था। दईहान में अकेला व्यक्ति नहीं होता था बल्कि तीन से पांच लोग रहते थे। दूध और दही को लंबे समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था, इसलिए घी बनाना ही ज्यादा श्रेयस्कर होता था। मेरे कुछ परिजन दईहान में रह चुके हैं। तो उनके मुंह से दईहान की बातें सुनना रोचक होता है।

वे बताते है कि घी को मिट्टी के हंडियों में महिलाएं सिर में ढोकर या पुरूष कांवड़ में लेकर पैदल ही दईहान से निवास तक की दूरी तय करते थे। ढलान वाली पहाड़ी से मिट्टी के बर्तनों में घी लेकर उतरना बहुत जोखिम भरा काम होता था। ढलान पर गति नियंत्रित करना मुश्किल होता था और उस पर मिट्टी के बर्तनों में भरे घी को चट्टानों या पेड़ों की टकराहट से बचाकर सुरक्षित लाना बहुत कठिन काम होता था। जरा सा चूके नहीं कि हफ्ते महीने भर की मेहनत मिट्टी में मिल जाती थी। दईहान का मातर पर्व बडा प्रसिद्ध होता था। इस दिन पशु मालिक अपने चरवाहे के लिए भेंट सामग्री और मातर मनाने के लिए आवश्यक चीजें लेकर जाता था और उस दिन पशुधन को खीचडी खिलाई जाती थी और मातर का पर्व धूम-धाम से मनाया जाता था। मालिक के द्वारा वस्त्र और धनराशि का सम्मान पाकर दफड़ा और मोहरी के मधुर संगीत के साथ दोहा पारते चरवाहे के मुख से निकल पड़ता-

भंइस कहंव भूरी रे भइया,खूंदे खांदे नइ खाय।
बघवा चितवा के माड़ा मा,सींग अड़ावत जाय।।

मातर देखने के लिए आसपास के ग्रामीण उमड़ पड़ते थे और उनको प्रसाद स्वरूप दूध, दही और छाछ पीने के लिए दिया जाता था। दईहान में किसी हिंसक प्राणी के द्वारा पशुधन की हानि होने पर मालिकों से डांट पड़ती थी सो अलग। लेकिन पेट की भूख आदमी को सब बर्दाश्त करना सीखा देती है। अपने बाल बच्चों और परिवार से दूर रहने की पीड़ा अलग। वर्तमान में गौधन की स्थिति अत्यंत हृदयविदारक है। गौपालन में निरंतर कमी आ रही है।देशी गाय के स्थान पर हाइब्रिड नस्लों को महत्व दिया जाता है। जब गौवंश ही नहीं रहेगा तो इससे जुड़ी अनेक परंपराएं,व्रत और पर्व भी समय के साथ विलुप्त हो जाएगी।

रीझे यादव
कोमाखान, टेंगनाबासा
(छुरा) जिला, गरियाबंद

समग्र सृष्टि के रचयिता
देव शिल्पी विश्वकर्मा

सृजन एवं निर्माण का के देवता भगवान विश्वकर्मा है, इसके साथ ऋग्वेद के मंत्र दृष्टा ऋषि भगवान विश्वकर्मा भी हैं। ऋग्वेद मे विश्वकर्मा सुक्त के नाम से 11 ऋचाऐं लिखी हुई है। जिनके प्रत्येक मन्त्र पर लिखा है ऋषि विश्वकर्मा भौवन देवता आदि। यही सुक्त यजुर्वेद अध्याय 17 सुक्त मन्त्र 16 से 31 तक 16 मन्त्रों मे आया है ऋग्वेद मे विश्वकर्मा शब्द का एक बार इन्द्र व सूर्य का विशेषण बनकर भी प्रयोग हुआ है। शास्त्र कहते हैं – यो विश्वजगतं करोत्यः सः विश्वकर्मा अर्थात वह समस्त जड़ चेतन, पशु पक्षी, सभी के परमपिता है, रचनाकार हैं। महर्षि दयानंद कहते हैं – विश्वं सर्वकर्म क्रियामाणस्य सः विश्वकर्मा सम्यक सृष्टि का सृजन कर्म जिसकी क्रिया है, वह विश्वकर्मा है। इस तरह सारी सृष्टि का निर्माता भगवान विश्वकर्मा को ही माना जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों के मनन-अनुशीलन से यह विदित होता है कि जहाँ ब्रहा, विष्णु ओर महेश की वन्दना-अर्चना हुई है, वही भगवान विश्वकर्मा को भी स्मरण-परिष्टवन किया गया है। "विश्वकर्मा" शब्द से ही यह अर्थ-व्यंजित होता है

"विश्वं कृत्स्नं कर्म व्यापारो वा यस्य सः। अर्थातः जिसकी सम्यक् सृष्टि और कर्म व्यापार है वह विश्वकर्मा है। यही विश्वकर्मा प्रभु है, प्रभूत पराक्रम-प्रतिपत्र, विश्वरुप विशवात्मा है। वेदों में- विश्वतः चक्षुरुत विश्वतोमुख्यो विश्वतोबाहुरुत विश्वस्पातः कहकर इनकी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, शक्ति-सम्पन्ना और अनन्तता दर्शायी गयी है।

इस तरह इतिहास में कई विश्वकर्मा हुए हैं, आगे चलकर विश्वकर्मा के गुणों को धारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष को विश्वकर्मा की उपाधि से अलंकृत किया जाने लगा। प्राचीन काल से अद्यतन विश्वकर्मा के अनुयायी या उनके वंशज आज भी विश्वकर्मा उपाधि को धारण करते हैं, जो कि वर्तमान में जाति व्यवस्था में रुढ हो गई। तत्कालीन समय में अभियंता को विश्वकर्मा कहा जाता था।

विश्वकर्मावंशीयों की रचनाओ एवं कृतियों के वर्णन से वैदिक एवं पौराणिक ग्रंथ भरे पड़े हैं तथा वर्तमान में भी परम्परागत शिल्पकारों द्वारा रची गयी आर्यावर्त के कोने कोने में गर्व से भाल उन्नत किए आसमान से होड़ लगा रही हैं। जिसे देख कर आज का मानव स्मृति खो देता है, उन कृतियों को बनाने वाले शिल्पकारों के प्रति नतमस्तक होकर सोचता है कि हजारों साल पूर्व मानव ने मशीनों के बगैर अद्भुत निर्माण कैसे किए होगें?

मानव के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का प्रथम चरण वैदिक काल से प्रारंभ होता है। इस काल में अग्नि का अविष्कार एक ऐसा अविष्कार था जिसने मानव के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन किया। उसे पशु से मनुष्य बनाया। यह अविष्कार मानव का सभ्यता की ओर बढता हुआ क्रांतिकारी कदम था। आज हम इस महान अविष्कार के महत्व को नहीं समझ सकते। जब जंगल की आग दानव की तरह सब कुछ निगल जाती थी, उसे काबू में करके प्रतिकूल से अनुकूल बनाने का कार्य मानव सभ्यता के लिए क्रांतिकारी अविष्कार था। आश्वलायन संहिता में इस कार्य का श्रेय महर्षि अंगिरा को दिया गया है।

सभी मनुष्यों के लिए उपस्करों एवं उपकरणों का निर्माण विकास का दूसरा चरण था। परम्परागत शिल्पकारों ने एक चक्रवर्ती राजा से लेकर साधारण मजदूर किसान तक के लिए उपकरणों का विकास किया गया। यज्ञों के लिए यज्ञपात्रों (जो मिट्टी, काष्ठ, तांबा, कांसा, सोना एवं चांदी के हुआ करते थे) से लेकर यज्ञ मंडप का निर्माण, राजाओं के लिए अस्त्र-शस्त्र, शकट, रथों का निर्माण, किसान मजदूरों के लिए हल, फ़ाल, कुदाल, कुटने, पीसने, काटने के उपकरण बनाए गए।

जिसे हम आज इंडस्ट्री कहते हैं प्राचीन काल में उसे शिल्पशास्त्र कहा जाता था। वायुयान, महल, दुर्ग, वायु देने वाले पंखे, थर्मामीटर, बैरोमीटर, चुम्बकीय सुई (कम्पास), बारुद, शतघ्नी (तोप) भुसुंडि (बंदुक) एवं एश्वर्य की अन्य भौतिक वस्तुओं का वर्णन संक्षेप में न करुं तो पुनः कई ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। परम्परागत शिल्पकारों ने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इतिहास की छाती पर अपने खून पसीने से जो कालजयी इबारतें लिखी हैं वे वर्तमान में भी अमिट हैं। काल का प्रहार भी उन्हे धराशायी नहीं कर पाया।

छत्तीसगढ़ भी शिल्प सृजन की दृष्टि से समृद्ध है, प्राचीन काल में यहाँ के शासकों ने उत्कृष्ट निर्माण कराए, जिन्हें हम सरगुजा से लेकर बस्तर के बारसूर तक देख सकते हैं। भले ही सभी के कालखंड पृथक हों परन्तु शिल्पियों का शिल्प आज भी स्थाई है जो वर्तमान में भी पर्यटकों का मन मोह लेता है। प्रस्तर, काष्ठ, ईष्टिका आदि से निर्मित शिल्प मनमोहक है। भले ही हजार वर्षों में काष्ठ शिल्प नष्ट होने के कारण हमें इन स्मारकों में दिखाई नहीं देता, परन्तु अदृष्य रुप से अवश्य वह उपस्थित है।

शिल्पकारों ने कलचुरियों के यहाँ भी निर्माण कार्य किया, उनकी उपस्थिति तत्कालीन अभिलेखों में दिखाई देती है। द्वितीय पृथ्वीदेव के रतनपुर में प्राप्त शिलालेख संवत 915 में उत्कीर्ण है " यह मनोज्ञा और खूब रस वाली प्रशस्ति रुचिर अक्षरों में धनपति नामक कृती और शिल्पज्ञ ईश्वर ने उत्कीर्ण की। उपरोक्त वर्णन से शिल्पकारों की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति का पता चलता है।

सिरपुर के सुरंग टीला के स्तंभों में शिल्पकारों ने अपने हस्ताक्षर छोडे हैं। यहाँ स्तंभों पर ध्रुव बल, द्रोणादित्य, कमलोदित्य एंव विट्ठल नामक कारीगरों के नाम उत्कीर्ण हैं। किसी राज्य या राजा के कार्यकाल की स्थिति का आंकलन हम उसके काल में हुए शिल्प कार्य, निर्माण एवं उसके द्वारा चलाए गए सिक्कों से करते हैं। इनका निर्माण परम्परागत शिल्पकारों के बगैर नहीं हो सकता। कई शिलालेखों में एवं ताम्रपत्रों में लेखक के नाम का जिक्र होता है। कुरुद में प्राप्त नरेन्द्र के ताम्रपत्र लेख में उत्कीर्णकर्ता के रुप में श्री दत्त का, आरंग मे प्राप्त जयराज के ताम्रलेख में अचल सिंह का, सुदेवराज के खरियार में प्राप्त ताम्रलेख में द्रोणसिंह का, महाभवगुप्त जनमेजय के ताम्रलेख में रणय औझा के पुत्र संग्राम का वर्णन है। प्रथम पृथ्वीदेव के अमोदा में प्राप्त ताम्रपत्रलेख में वर्णन है कि "गर्भ नामक

गाँव के स्वामी ईशभक्त सुकवि अल्हण ने सुन्दर वाक्यों से चकोर के नयन जैसे सुंदर अक्षर ताम्र पत्रों पर लिखे जिसे सभी शिल्पों के ज्ञाता सुबुद्धि हासल ने शुभ पंक्ति और अच्छे अक्षरों में उत्कीर्ण किया।"

द्वितीय पृथ्वीदेव के रतनपुर में प्राप्त शिलालेख संवत 915 में उत्कीर्ण है " यह मनोज्ञा और खूब रस वाली प्रशस्ति रुचिर अक्षरों में धनपति नामक कृती और शिल्पज्ञ ईश्वर ने उत्कीर्ण की। उपरोक्त वर्णन से शिल्पकारों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति का पता चलता है। इसी कालखंड में राणा कुंभा ने मेवाड़ में पन्द्रहवीं शताब्दी में कुंभलगढ़ का निर्माण 13 मई 1459 शनिवार कराया था, इस किले को 'अजयगढ' कहा जाता था क्योंकि इस किले पर विजय प्राप्त करना दुष्कर कार्य था। इसके चारों ओर एक बडी दीवार बनी हुई है जो चीन की दीवार के बाद विश्व कि दूसरी सबसे बडी दीवार है। इस किले की दीवारे लगभग 36 किमी लम्बी है और यह किला किला यूनेस्को की सूची में सम्मिलित है।

इसके साथ ही वाहर के कोसगई में प्राप्त प्रथम शिलालेख के पाठ की पंक्ति 21 एवं 23 में (श्री मन्मन्मथ – सूत्रधारतनयौ श्रीछित्तकूमाण्डनावास्तां मानसदा तथा सजाक सूत्रधार छित्तकू मांडनश्च लेखदासः) लेख प्राप्त होता है। सूत्रधार मंडन के तनय ने कलचुरियों के यहाँ अपनी सेवाएं दी। वाहरेन्द्र का विक्रम संवत 1570 का शिलालेख इसका प्रमाण है।

सूत्रधार मंडन महाराणा कुंभा के दुर्ग का मुख्य सूत्रधार (वास्तुविद) था, काशी के कवींद्राचार्य (17वीं शती) की सूची में मंडन द्वारा रचित ग्रंथों की नामावली मिलती है। इसकी रचनाएँ ये हैं – 1. देवतामूर्ति प्रकरण, 2. प्रासादमंडन, 3. राजबल्लभ वास्तुशास्त्र, 4. रूपमंडन, 5. वास्तुमंडन, 6. वास्तुशास्त्र, 7. वास्तुसार, 8. वास्तुमंजरी और 9. आपतत्व।

आपतत्व के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। रूपमंडन और देवतामूर्ति प्रकरण के अतिरिक्त शेष सभी ग्रंथ वास्तु विषयक हैं। वास्तु विषयक ग्रंथों में प्रासादमंडन सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें चौदह प्रकार के अतिरिक्त जलाशय, कूप, कीर्तिस्तंभ, पुर, आदि के निर्माण तथा जीर्णोद्धार का भी विवेचन है। मंडन सूत्रधार मूर्तिशास्त्र का भी बहुत बड़ा पंडित था। राजपूताना के मुख्य वास्तुविद की ख्याति हमें वाहरेन्द्र के शिलालेख से भी ज्ञात होती है, इस शिलालेख में सूत्रधार तनयो श्रीछित्तकूमाण्डनावास्तां मानसदा लेख से ज्ञात होता है कि राजपूताना के शिल्पकारों एवं वास्तुविदों ने तत्कालीन कलचुरियों के यहां भी अपनी सेवाएं दी।

छत्तीसगढ़ में राज्य संरक्षित प्रमुख स्थलों में कुलेश्वर मंदिर राजिम, शिव मंदिर चंद्ररखुरी, सिद्धेश्वर मंदिर पलारी, चितावरी देवी मंदिर धोबनी, मालवी देवी मंदिर तरपोंगी, प्राचीन मंदिर ईंट नवागांव, प्राचीन मंदिर डमरु, बलौदाबाजार, फणीकेश्वरनाथ महादेव मंदिर फिंगेश्वर, शिव मंदिर गिरौद, आनंदप्रभ कुटी विहार सिरपुर, स्वास्तिक विहार सिरपुर, जगन्नाथ मंदिर खल्लारी, कर्णेश्वर महादेव मंदिर समूह सिहावा, भोरमदेव मंदिर कबीर धाम, छेरकी महल चौराग्राम कबीर धाम, मड़वा महल कबीरधाम, शिव मंदिर घटियारी, बजरंगबली मंदिर सहसपुर, शिव मंदिर सहसपुर, नगदेवा मंदिर, नगपुरा, शिव मंदिर नगपूरा, घुघुसराजा मंदिर देवगढ़, प्राचीन मंदिर डोंडीलोहारा, बुद्धेश्वर शिव मंदिर तथा चतुर्भूजी मंदिर धमधा, शिव मंदिर पलारी दुर्ग जिला, शिव मंदिर जगन्नाथपुर दुर्ग जिला, कपिलेश्वर मंदिर समूह बालोद, महामाया मंदिर रतनपुर, प्राचीन शिव मंदिर किरारीगोढी, बिल्हा, देवरानी जेठानी मंदिर ताला, धूमनाथ मंदिर सरगांव, शिवमंदिर गनियारी, गुढियारी शिवमंदिर केसरपाल बस्तर, बतीसा मंदिर बारसूर, लक्ष्मणेश्वर मंदिर खरौद, डीपाडीह, मंदिर समूह सतमहला, मंदिर समूह

बेलसर हर्राटोला, महेशपुर सरगुजा इत्यादि हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित स्मारकों में दंतेश्वरी मंदिर दंतेवाड़ा, बस्तर, चंद्रादित्य मंदिर बारसूर, गनेश प्रतिमाएं बारसूर, मामा भांजा मंदिर बारसूर, महादेव मंदिर बस्तर, भैरम देव मंदिर भैरमगढ़, नारायण मंदिर नारायणपाल, कारली मंदिर समलूर, विष्णु मंदिर जांजगीर, शिव मंदिर जांजगीर, मल्हार का किला, महादेव मंदिर पाली, पातालेश्वर मंदिर मल्हार, शिवरीनारायण मंदिर, महादेव मंदिर तुम्माण, शिव मंदिर देवरबीजा, शिव मंदिर देवबलौदा, लक्ष्मण मंदिर सिरपुर आदि प्रमुख स्थल हैं।

इससे ज्ञात होता है कि विश्वकर्मावंशीयों ने दक्षिण कोसल में भी अपनी प्रतिमा एवं शिल्प ज्ञान का लोहा मनवाया, अधिकतर मंदिरों पर उड़ीसा शैली की छाप दिखाई देती है इससे ज्ञात होता है कि कोणार्क का निर्माण करने वाले महाराणाओं के वंशजों ने छत्तीसगढ़ अंचल में भी अपनी सेवाएं दी, उड़ीसा में विश्वकर्मवंशी कारीगर शिल्पकार महाराणा की उपाधि धारण करते हैं।

प्रभास के देववर्धकी विश्वकर्मा यानी सोमनाथ के शिल्पिकारों का संदर्भ मत्स्य, विष्णु आदि पुराणों में आया है जिनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए उनकी परंपरा का स्मरण किया गया।शिल्पग्रंथों में विश्वकर्मा को कभी शिव तो कभी विधाता का अंशीभूत कहा गया है। कहीं-कहीं समस्त सृष्टिरचना को ही विश्वकर्मीय कहा गया। (श्रीकृष्ण जुगनु) विश्वकर्मावतार, विश्वकर्मशास्त्र, विश्वकर्मसंहिता, विश्वकर्माप्रकाश, विश्वकर्मावास्तुशास्त्र, विश्वकर्मीशिल्पशास्त्रम्, विश्वकर्मीयम् आदि कई ग्रंथ है जिनमें विश्वकर्मीय परंपरा के शिल्पों और शिल्पियों के लिए आवश्यक सूत्रों का गणितीय रूप में सम्यक परिपाक हुआ है। इनमें कुछ का प्रकाशन हुआ है। समरांगण सूत्रधार, अपराजितपृच्छा आदि ग्रंथों के प्रवक्ता विश्वकर्मा ही हैं। ये ग्रंथ भारतीय आवश्यकता के अनुसार ही रचे गए हैं। (श्रीकृष्ण जुगनु) अगर हम समग्र दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि दक्षिण कोसल में राजपुताना (राजस्थान) से लेकर उड़ीसा तक के कारीगरों ने अपनी सेवाएं दी हैं तथा निर्माण कार्य में अपनी सक्रीय भागीदारी निभाई है। इसके साथ यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन शासकों ने उत्कृष्ट शिल्पकार्य के लिए श्रेष्ठ शिल्पियों को ही आमंत्रित किया, चाहे वे कहीं के भी निवासी हों। इन शिल्पियों की रचनाएं हजारों वर्षों का कालखंड बीतने के बाद हमें आज भी दिखाई देती हैं, उनके हाथों ने ही इन रचनाओं को मूर्त रुप दिया, आज विश्वकर्मा पूजा पर सभी शिल्पकारों को नमन।

ललित शर्मा
प्रधान संपादक न्यूज एक्सप्रेस

छत्तीसगढ़ के मानसून का सम्मोहन

ग्रीष्म ऋतु के पश्चात वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा सभी को होती है, भीषण गर्मी से व्याकुल धरा पर जब वर्षा की फूहारें पड़ती हैं तो वह नर्तन करने लगती है। धरती पर पड़े बीजों पर जब वर्षा की बूंदे पड़ती है तो वह अंगड़ाई लेकर जाग उठता है, पौधे से वृक्ष बनने के लिए बढ़ने लगता है। चातक की कूक एवं चारों ओर बगरी हरियाली, खेतों में हल चलाते किसान का पावस गीत एवं प्रातःकाल में मंदिरों की घंटियों की मधुर ध्वनि वातावरण को नयनाभिराम, मनमोहक बना देती है। वर्षा काल में प्रकृति का यह अद्भुत श्रृंगार छत्तीसगढ़ में देखने के लिए घर से बाहर निकलना पड़ेगा।

छत्तीसगढ़ एक ऐसा प्रदेश है जहाँ मुख्यमार्ग कभी बंद नहीं होते, आप जशपुर, सरगुजा के अंतिम छोर से लेकर बस्तर तक निर्बाध यात्रा कर सकते हैं। यहाँ छहों ऋतुएं अपने पूर्ण यौवन पर होती हैं, पर वर्षा ऋतु का आनंद ही कुछ और है। जब आपको हर पचास किलोमीटर में कल कल करते झरने मिल जाएंगे, इन झरनों का अद्भुत सौंदर्य मन को एकाग्र चित्त करने में पूर्ण रुप से सहायक होता है, प्रकृति में मन रम जाता है।

अपनी वर्षाकालीन यात्रा अगर हम जशपुर से शुरु करें तो यहाँ दमेरा, दानगिरि, रानीदाह, कोटबेरिया, रजपुरी, गुल्लु, कैलाश गुफा आदि झरने मनोरम दृश्य उत्पन्न करते हैं। कैलाश गुफा से अम्बिकापुर की तरफ आएं तो छत्तीसगढ़ का शिमला कहा जाने वाले मैनपाट पहुंचते हैं। यहां आपको बादल सड़क पर विचरण करते मिल जाएंगे। मैनपाट में बहुत सारे ऐसे स्थान हैं जिन्हें आप देखे बगैर नहीं रह सकते। यहाँ मछली झरना, टायगर पाईंट झरना, चचारौना झरना, जलजली, उल्टा पानी आदि मनोरम स्थलों के दर्शन होते हैं।

सरगुजा के अम्बिकापुर के रकसगंडा वाटरफॉल से लेकर कोरिया के अमृतधारा, गौरघाट, पवई वाटरफॉल पर्यटन का प्रमुख केन्द्र हैं। बैकुंठपुर से हम कोरबा के केंदई एवं देवपहरी वाटरफॉल पहुंच सकते हैं। इसके समीप ही बुका नामक बहुत खूबसूरत जल विहार है। ट्रेकिंग हाईकिंग करना चाहें तो वन क्षेत्र में अन्य छोटे छोटे झरने भी मिल सकते हैं।

मध्य छत्तीसगढ़ में सियादेई वाटरफॉल बालोद, हाजरा वाटर फ़ॉल दरेकसा, रानीदहरा-कवर्धा, खरखरा -डौंडी लोहारा, दमऊधारा-सक्ती तथा गरियाबंद जिले का चिंगरापगार, जगमई, घटारानी, देवधर एवं धमतरी जिले का नरहरा वाटरफॉल, महासमुंद के सिरपुर के समीप धसकुड़ का झरना भी मनमोहक है।

राजधानी रायपुर से हम बस्तर की ओर चलें तो रक्षदा वाटरफॉल-कांकेर, मलाजकुंड वाटर फ़ॉल – कांकेर, चर्रे-मर्रे वाटर फ़ॉल कांकेर, चित्रधारा – जगदलपुर, भारत का नियाग्रा कहाने वाला जग प्रसिद्ध चित्रकोट जलप्रपात, तीरथगढ़ जलप्रपात, तामड़ाघुमर जलप्रपात, झारालावा झरना- दंतेवाड़ा, कांगेरधारा वाटरफ़ॉल, मंडवा वाटरफॉल-जगदलपुर तथा हांदावाड़ा जल प्रपात, हांदावाड़ा जल प्रपात का चुनाव बाहुबली फ़िल्मांकन के लिए किया गया था, पर किन्हीं कारणों से स्थगित कर दिया गया।

बस्तर पहुंचकर आप दंतेवाड़ा से ढोलकल की ट्रेकिंग कर सकते हैं। यह स्थान दंतेवाड़ा से 18 किमी की दूरी पर फ़रसपाल तक वाहन से जा सकते है, फ़िर लगभग तीन घंटे की ट्रेकिंग के पश्चात यहाँ पहुंचा जा सकता है। यहाँ पहुंचने पर एकबारगी आपके मुंह वाऊऊउ ही निकलेगा। पहाड़ी के शीर्ष पर पहुंचने के पश्चात प्रतीत होगा कि धरती का स्वर्ग यहीं है। वर्षाकाल में छत्तीसगढ़ के वनों की हरियाली देखते ही बनती है, आंखों को सुकून के साथ मन जो भी हरिया कर जाती है। साल के ऊंचे-ऊंचे वृक्षों से प्रवाहित होती हवा जंगल की सौंधी सुगंध लेकर आती है, तो वनों की जैव विविधता किसी खोजी को नये कीट पतंगों की की खोज का आमंत्रण देती है। पहाड़ों पर उतरे हुए बादल देखकर लगता है कि विश्राम के लिए मानों कुछ पल के लिए ठहर गए हों। सरगुजा का रामगढ़ जहाँ पावस प्रेरणा से महाकवि कालीदास ने मेघदूत रचा था।

मन करेगा कि बादलों पर सवार होकर उड़ता जाऊं एवं बादलों की सवारी का भरपूर आनंद लूं। यहाँ के बादल ऐसे वैसे नहीं, कुछ विशेष हैं। तभी तो महाकवि कालीदास ने इन बादलों से प्रभावित होकर इन्हें अपना दूत बनाया एवं रामगढ़ की उपत्यका में निवास कर संसार का अद्भुत श्रृंगार काव्य मेघदूत रच दिया। वे बादल आज भी रामगढ़ की उपत्यकाओं में आपको घूमते फ़िरते मिल जाएंगे।

इन दिनों आप छत्तीसगढ़ की मानसून यात्रा कहीं से भी प्रारंभ कीजिए आपको प्रकृति के अद्भुत नजारे देखने मिलेंगे। सड़क पकड़ कर जिधर भी निकल जाईए, दो-चार झरने मिल ही जाएंगे। अभयारण्य वर्षाकाल में तीन महीने के लिए बंद कर दिए जाते हैं, पर वन्य ग्रामों का भ्रमण किया जा सकता है। फ़िर इंतजार किस बात का? अपना बैकपैक बांधिए और निकल पड़िए छत्तीसगढ़ के मानसून भ्रमण के लिए। मानसून भ्रमण के लिए अभी यह उपयुक्त मौसम है। हो सकता है पावस गीत सुनाने के लिए आपका कोई इंतजार रहा हो।

ललित शर्मा
प्रधान संपादक न्यूज एक्सप्रेस

विष्णु के सुशासन से
संवर रहा छत्तीसगढ़

सुशासन और समग्र विकास के

6 माह

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

श्री विष्णुदेव साय
माननीय मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

विकास की नई राह

- कृषक उन्नति से समृद्ध किसान, 3100 रुपए में खरीदा धान
- मिला दो वर्षों का 3716 करोड़ रुपए बकाया बोनस
- पीएम आवास से 18 लाख से अधिक परिवारों को अपना मकान, गरीबों का रखा ध्यान
- मुफ्त अनाज से गरीबों का कल्याण, एक करोड़ से अधिक परिवारों को 5 वर्षों तक राशन
- महतारी वंदन से महिलाओं को आर्थिक संबल, प्रतिवर्ष 12,000 रुपए की मदद से 70 लाख महिलाओं को मिला बल
- तेंदूपत्ता मानदेय अब बढ़कर प्रति मानक बोरा 5,500 रुपए भुगतान, आदिवासी का सम्मान
- शासकीय भर्ती आयु सीमा में 5 वर्ष की छूट मिली, युवाओं में चहुँओर खुशी
- भ्रष्टाचार मुक्त पारदर्शी भर्ती प्रक्रिया सुनिश्चित, युवा रहेगा अब निश्चिंत
- 'नियद नेल्लानार' से माओवादी समस्या का पूर्ण निदान, लड़ाई से आगे बढ़ विकास का विधान
- त्वरित निर्णय- सख्त प्रशासन, विगत 6 माह में, 129 माओवादी ढेर, 488 गिरफ्तार, 431 आत्मसमर्पण
- 'रामलला दर्शन योजना' से श्रद्धालुओं को अयोध्या धाम की निःशुल्क यात्रा का मिल रहा सौभाग्य

सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास

Visit us : ChhattisgarhCMO ChhattisgarhCMO ChhattisgarhCMO ChhattisgarhCMO DPRChhattisgarh DPRChhattisgarh www.dprcg.gov.in छत्तीसगढ़ जनसंपर्क

RO NO 12799/1 Date-26-6-24

श्री नरेन्द्र मोदी
माननीय प्रधानमंत्री

छत्तीसगढ़

खुशियों का गढ़

श्री विष्णु देव साय
मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

हम खुश हैं
क्योंकि हम किसानों से किए गए वादे पूरे हुए हैं। हमें दो साल का बकाया बोनस मिला है।

हम खुश हैं क्योंकि नई शिक्षा नीति के तहत अब हम क्षेत्रीय बोली-भाषा में भी पढ़ पाएंगे। हमारी पढ़ाई को आसान बनाने के लिए हमारे विष्णु देव सरकार को बहुत-बहुत धन्यवाद।

हम खुश हैं
क्योंकि हम सरकार को ₹3100 प्रति क्विंटल की दर से धान बेचते हैं, जो भारत में सबसे अधिक कीमत है। इस साल राज्य में रिकॉर्ड 145 लाख मीट्रिक टन धान की खरीदी हुई है।

हम खुश हैं
क्योंकि हमें कई सालों के बाद प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत अपना खुद का पक्का घर मिला है।

हम खुश हैं क्योंकि हमारी तरह राज्य की 70 लाख बहनों को महतारी वंदन योजना से प्रति माह ₹1000 मिलते हैं, जिससे हम आत्मनिर्भर हो रहे हैं।

हम खुश हैं क्योंकि हमें हमारे परिश्रम का सम्मान मिला- तेंदूपत्ता संग्रहण की दर ₹4000 से ₹5500 बढ़ा दी गई और खरीदी की समय-सीमा भी बढ़ाई गई। हरा सोना अब बना खरा सोना।

हम खुश हैं
क्योंकि हम युवाओं को सरकारी भर्तियों के लिए निर्धारित आयु में 5 वर्ष की छूट मिली है। अब रोज़गार के नए रास्ते खुल गए।

हम खुश हैं
क्योंकि जनदर्शन में हज़ारों लोग प्रदेश के मुखिया से मिल पा रहे हैं, अपनी समस्याएं सुनाकर त्वरित निवारण पा रहे हैं।

हम खुश हैं क्योंकि प्रदेश में भ्रष्टाचार के खिलाफ तेज़ी से कार्रवाई की जा रही है। विष्णु देव सरकार की ज़ीरो टॉलेरेंस नीति राज्य में सुशासन ला रही है।

हम खुश हैं
क्योंकि हमारे श्रवण कुमार विष्णु देव हमें निःशुल्क अयोध्या-काशी तीर्थ भ्रमण करा रहे हैं। इस जीवन में हमने रामलला दर्शन योजना से जीवन का पुण्य पा लिया।

हमसे जुड़ने के लिए
QR CODE स्कैन करें।

हमने बनाया है, हम ही सँवारेंगे

Visit us : ChhattisgarhCMO ChhattisgarhCMO ChhattisgarhCMO ChhattisgarhCMO DPRChhattisgarh DPRChhattisgarh www.dprcg.gov.in छत्तीसगढ़ जनसंपर्क

RO NO 12909/1 Date-01-9-24